# अध्याय : 4

# हिन्दी फिल्मों में निरूपित थर्ड जेंडर- संघर्ष एवं समस्याएँ

# अध्याय : 4

## हिन्दी फिल्मों में निरूपित थर्ड जेंडर- संघर्ष एवं समस्याएँ

फिल्म समाज को प्रतिबिंबित करने के लिए सबसे प्रभावी कला रूपों में से एक है । इसका समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है कि यह जनमत को प्रभावित करता है, सामाजिक मानदण्डों को आकार देता है और परिवर्तन को प्रेरित करता है, इसे समाज का ही प्रतिबिंब कहा जा सकता है । इसलिए कि यह समाज में हो रहे वास्तविकता है से रूबरू होने में मदद करता है । जैसी चीजों को वैसे ही चित्रित करता है जैसे वे हैं और उन मुद्दों के प्रति हमारी आँखें खोलने में सहायता करता है । उनमें से एक है हिजडा समाज जिन्हें हम ने अतीत में नज़र अंदाज़ किया था । थर्ड जेंडर (हिजड़ा) विमर्श, लैंगिक अल्प संख्यक के रूप में मुख्य धारा समाज से हटकर जीने वाले लोगों की श्रेणी है । विश्व में ऐसा कोई देश नहीं हैं जहाँ थर्ड जेंडर के लोग न हो । भारत में थर्ड जेंडर एक सीमित समाज के रूप में सिमटकर रह गया है । मुख्यधारा के समाज में बहिष्कृत, व्यंग्य, घृणा, तिरस्कार आदि सहने को अभिशप्त इस श्रेणी के इंसानों की यौन स्थिति के आधार पर कई और नामों से पुकारा जाता है जैसे किन्नर, उभय लिंगी, शिखंडी । अन्य क्षेत्रों से अलगाव में रखे जाने वाले यह समुदाय को सामाजिक बहिष्कार के परिधि में धकेल दिया गया है । फिल्म समाज की वास्तविकता को व्याख्या करने वाली सशक्त माध्यम हैं और वह लोगों को तुरंत प्रभावित करने में मदद करती है ।

### 4.1 हिंदी फिल्मों में थर्ड जेंडर

फिल्म का प्रचार प्रति दिन बढ़ रहा है । सिनेमा भी समाज की बनायी हुई उन कमजोर परम्पराओं को धराशायी करने का प्रयास करता है, जो कि समाज की उन्नति में बाधक हो । आज के भारतीय सिनेमा की बात की जाए तो यहाँ ऐसी फिल्में कम ही बनती हैं जो सच्चाई के अधिक निकट हों या जो सड़ी हुई परम्पराओं को जड़ से उखाड़ फेंकने का

दम रखती हों । इसका कारण है हमारे भारतीय दर्शक जो समाज के संवेदनशील मुद्दों के प्रति उदासीन हैं और फिल्मों में दिखाई जाने वाली कहानी उनके लिए केवल मनोरंजन से अधिक कुछ भी नहीं है । आज हिंदी सिनेमा के दशक 100 वर्ष से अधिक हो चुके हैं लेकिन ट्रांसजेंडर का जीवन, उनकी समस्याओं, उनकी सामाजिक स्थिति, समाज व उनके प्रति नज़रिया, उनके प्रति किए जा रहे पाशविक व्यवहारों को भी समग्र तरीके के व्यक्त करने की कोशिश नहीं की गई है ।

पहले पहल हिंदी फिल्मों में उनकी भूमिका जन्मोत्सव, विवाह में बधाई देने, नाचने गाने तथा भीख मांगने तक की सीमित थे । 1974 में निकली 'नया दिन नई रात' फिल्म में संजीव कुमार नौ किरदारों में एक किन्नर का पात्र था । यह शायद पहली फिल्म होगी जिसमें किसी मुख्य अभिनेता ने ऐसा किरदार निभाया है । फिल्म में ट्रांसजेंडर के बारे में कोई बात नहीं हुई फिर भी इनसे संबंधित मुद्दों के लिए नई रास्ता खुल गयी । इस फिल्में ज्यादातर वास्तविक जीवन के हिजडा को पर्दे पर लाने की कोशिश की है ।

सन् 1974 में निकली अगले फिल्म था कुँवारा बाप, इसमें किन्नर समुदाय पर एक गीत फिल्माया गया है 'सज रही गली मेरी अम्मा', इन्हें परम्परागत रूप में जन्म के अवसर पर गाते-नाचते 'दिखाया गया है । एक बात और है कि इन फिल्मों में हिजडा की समस्याओं को उस रूप में चित्रित नहीं किया गया है, लेकिन हिंदी फिल्मों में 'थर्ड जेंडर' से सम्बंधित मुद्दे के लिए एक रास्ता खुल चुके थे । इसे आकार लेने में कई साल लग गए । सन् 7 जनवरी 1977 की फिल्म 'अमर अकबर अन्थोनी' का एक मशहूर गाना 'तैय्यब अली प्यार का दुश्मन हाय-हाय' काफी मशहूर हुआ था । फिल्म में ऋषि कपूर अपनी प्रेमिका के पिता को एक सबक सिखाने के लिए कुछ हिजडों को पैसे देकर उनके साथ मिलकर ये गाना गाते हैं । इन फिल्मों के बाद कई फिल्में आयीं, जिनमें हास-परिहास या हीरो-हीरोईन की मदद के लिए ऐसे किरदारों को फिल्म में जान-बूझकर डाला जाता था । एक-दो

इमोशनल डायलॉग और चार-पांच सीन तक ही सीमित रहता था 'हिजडा' का दृश्य । फिल्में समाज का आईना होती है । समाज हिजडा, उभयलिंगी व समलैंगिक समाज को हाशिये पर रखता है । फिल्मों में भी इस समाज को मुख्यतरू हास-परिहास वाले कॉमेडी पात्र के रूप में स्थान मिला है । बहुत सी फिल्मों में हिजडा पात्र का चित्रण इसी रूप में मिलता है । विवाह, जन्म आदि के अवसर पर बधाई गीत गाते हुए ही अधिकांशतरू नजर आते है । सामाजिक ताने-बाने का असर फिल्मों पर भी होता है । समाज इनकी हँसी उड़ाता है तो फिल्मों में भी यह वर्ग हास्यात्मक अभिव्यक्ति पाता है ।

1990 के पहले की फिल्मों में ट्रांसजेंडर को भीख माँगना, बधाई देना आदि रूपो में ही दिखाया जाता था । इसका मुख्य कारण भारतीय दर्शक समाज के संवेदनशील मुद्दे के प्रति विमुखता प्रकट करने की वजह से हुआ । लोगों को समाज की समस्याओं पर रुझाव न था सिर्फ उन के लिए मनोरंजन ही प्रिय था । लेकिन बाद में निकली फिल्मों में हिजडाओं की समस्याओं का चित्रण करना शुरु किया । ट्रान्स जेंडर के वेदना और सच्चाई को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने में फिल्म आज के समय में सक्षम हुए है । 1990 के बाद, भारत में ट्रांसजेंडर लोगों पर केंद्रित कुछ प्रमुख हिंदी फिल्में बनने शुरू हुईं ।

## 4.2 थर्ड जेंडर पर आधारित हिन्दी फिल्में

हिंदी सिनेमा ने समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों और समुदायों की कहानियों को बड़े पर्दे पर लाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है, और इस संदर्भ में ट्रांसजेंडर समुदाय का चित्रण एक विशिष्ट स्थान रखता है । प्रारंभिक दौर में, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को हास्य या खलनायक के सांचे में बांधकर प्रस्तुत किया गया, जिससे समाज में उनके प्रति पूर्वाग्रह और गलत धारणाओं को बढ़ावा मिला । किन्तु समय के साथ, सिनेमा ने इस समुदाय के संघर्षों, पहचान की लड़ाई और गरिमा के संघर्ष को केंद्र में रखते हुए उनके जीवन की जटिलताओं को अधिक गहराई और संवेदनशीलता के साथ उकेरा । इन कहानियों ने न

केवल समाज में इस समुदाय के प्रति सहानुभूति और संवेदनशीलता को बढ़ावा दिया, बल्कि उनकी वास्तविकता और अधिकारों की मान्यता को भी बल दिया । प्रस्तुत 12 फ़िल्में इस बात का सशक्त उदाहरण हैं कि किस प्रकार सिनेमा ने ट्रांसजेंडर समुदाय की समस्याओं और संघर्षों को प्रभावी ढंग से उजागर किया है ।

**4.2.1 सड़क (1991)**

महेश भट्ट द्वारा निर्देशित फिल्म सड़क 1991में प्रदर्शित हुई । इस फिल्म में खलनायक के रूप में एक हिजड़ा चरित्र की भूमिका है जो अपने अमानवीय चरित्र से सभी को अचंभित कर देता है । इस फिल्म ने हिजड़ा समुदाय की खराब छवि प्रदर्शित की है । प्रस्तुत फिल्म कथानक वेश्यावृत्ति, देह व्यापार पर आधारित है ।

फिल्म की खलनायक 'महाराणी' हिजड़ा है जो वेश्यावृत्ति का धंधा चलाती है। जो आर्थिक स्थिति से कमजोर लड़कियों को बहला-फुसलाकर उन्हें अपने कोठे की रौनक बनाती है । वह अपने इस धंधे को बनाये रखने के लिए कोई भी अनुचित काम कर गुजरने को तैयार है । यहाँ तक कि उसे लोगों के खून करने से भी परहेज नही है । नायक रवि की बहन रूपा को भी महाराणी अपने धंधे में जोड़ने की कोशिश करती है इसी बीच रूपा की मृत्यु हो जाती है । रूपा की मृत्यु में भी महाराणी की भूमिका है । इस हिंसक घटना से रवि को गहरा सदमा लगता है । रवि वेश्यालय में बंधनस्थ पूजा से प्यार करता है लेकिन इस रिश्ते को महाराणी स्वीकार नहीं करती और उन्हें अलग करने की कोशिश करती है । इस दौरान पूजा को अपने कोठे में लाने के लिए कई कत्ल करती व करवाती है । लेकिन अंततः वह पूजा और रवि दोनों को अलग करने में विफल हो जाती है ।

हिजड़ा खलनायक की भूमिका अभिनेता सदाशिव अमरापुरकर ने बडी ही सशक्तता से निभाई है । फिल्म में महाराणी खुद को अभिशप्त मानती है । महाराणी ऐसे हिजड़ों

का प्रतिनिधित्व करती है जो अपने हिजड़ा होने का प्रतिशोध समाज से लेना चाहती हैं । यही प्रतिशोध की भावना महाराणी को क्रूर और अमानवीय बना देती है । फिल्म में खलनायक महाराणी की निष्ठुरता को देखकर उसके कोठे के ग्राहक उससे कहते हैं कि "तुम में कोई इंसानियत नाम की चीज़ है कि नहीं ?[1]" तब महाराणी कहती है "लोगों ने मुझे न मर्द कहा हिजड़ा कहा, हम लोगों को कभी किसी ने इंसान समझा ही कहाँ जो हमसे इंसानियत की उम्मीद की जाए[2]" ।फिल्म का यह संवाद हिजड़ा होने के दर्द को बखूबी दर्शाता है जो दर्शकों को सोचने में मजबूर करता है कि आखिर हम इन्हें इंसान का दर्जा क्यों नहीं देते हैं । फिल्म ने कई सामाजिक मुद्दों को उजागर करने का प्रयास किया है, जैसे कि गरीबी, जातिवाद, राजनीतिक असमानता, नेताओं के भ्रष्टाचार और आत्मनिर्भरता की मुद्दे आदि । इस फिल्म में हिजड़े की नकारात्मक प्रस्तुति के साथ-साथ कुछ सीमा तक हिजड़ों की स्थिति को उजागर करने की चेष्टा निश्चित रूप से की गई है ।

### 4.2.2 दरमियाँ- इन बिट्वीन (1997)

"दरमियान - इन बिट्वीन" (1997) कल्पना लाज़मी द्वारा निर्देशित एक संवेदनशील फिल्म है, जो हिजड़ा समुदाय के जटिल सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों को उजागर करती है । फिल्म का केंद्र पात्र इम्मी है, जो दो मुख्य लैंगिक पहचानों और समुदायों के बीच उलझा हुआ है ।

कहानी की शुरुआत इम्मी के बचपन से होती है, जब वह अपने दोस्तों के बीच अस्वीकार्यता का सामना करता है । एक दिन, दोस्तों द्वारा नामर्द कहे जाने पर वह रोता हुआ घर लौटता है । यह घटना इम्मी की पहचान के प्रति उसके डर और असमंजस को उजागर करती है । चंपा, जो हिजड़ों के एक छोटे स्थानीय समूह का नेता है, इम्मी को समझाने की कोशिश करता है: "तुम भी मेरी तरह एक हिजड़ा हो।[3]" दूसरी ओर, इम्मी की मां ज़ीनत बेगम, जो एक फिल्म अभिनेत्री है, समाज के डर से इम्मी को अपना बेटा मानने का

साहस नहीं करती। वह समाज के सामने उसे अपना भाई बताती है, और इम्मी मजबूरन अपनी मां को "आपा" कहकर पुकारता है। ज़ीनत अपने मातृत्व की छत्रछाया में इम्मी को बचाने की कोशिश करती है, यह कहते हुए: "तुम भी बाकी लोगों की तरह एक सामान्य बालक हो[4]।" लेकिन इम्मी के बड़े होने पर उसे अपनी सच्चाई का अहसास होता है। उसे लगता है कि बचपन में ही उसे हिजड़ा समाज के सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए था । अंततः, पुरुष प्रधान समाज के भय और अस्वीकृति से तंग आकर, इम्मी हिजड़ा समुदाय का हिस्सा बन जाता है।

अपने नए जीवन में, इम्मी स्त्री वेशभूषा अपनाकर गायन और नृत्य में भाग लेता है। लेकिन हिजड़ा समाज की कठोर सच्चाई—देह व्यापार—उसके जीवन को भावनात्मक और शारीरिक रूप से झकझोर कर देती है । यौन उत्पीड़न और अमानवीय व्यवहार से आहत होकर वह उस समाज से भाग जाता है  और अपनी मां का सहायक प्रबंधक बनता है । लेकिन, आर्थिक तंगी उसे पुनः हिजड़ा समुदाय में लौटने के लिए मजबूर करती है । इस बार भी वह देह व्यापार से इनकार करता है, जिसके कारण समाज उसे लगातार शोषित करता है । अंततः, वह हिजड़ा बिरादरी को हमेशा के लिए छोड़ देता है, भले ही वे उसे वापस लाने की भरपूर कोशिश करते हैं । घर लौटी इम्मी जीनत बेगम के साथ अंत तक नहीं छोडता । फिल्म में इम्मी न केवल अपनी पहचान के प्रति स्पष्टता प्राप्त करता है, बल्कि अपनी आत्मा और सम्मान की रक्षा भी करता है । फिल्म हिजड़ा समुदाय के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है और उनके मताधिकार तथा कठिन जीवन से जुड़े मुद्दों पर गहराई से चर्चा करती है।

**4.2.3 तमन्ना (1997)**

फिल्म की पटकथा मुम्बई के एक हिजड़े समुदाय के जीवन की वास्तविक घटनाओं पर आधारित है । फिल्म में हिजड़े की मनोदशा, स्त्री भ्रूण हत्या एवं घरेलू हिंसा जैसे सामाजिक मुद्दाओं की और इशारा किया है ।

महेश भट्ट द्वारा निर्देशित और तनुजा चंदा एवं महेश भट्ट द्वारा लिखित फिल्म 'तमन्ना' (1997) एक हिजडा की सच्ची कहानी है, जो सड़क पर मिली एक लावारिस बच्ची को अपने घर लाकर उसे अपनी पुत्री बनाता है। वह उस बच्ची का नाम 'तमन्ना' रखता है और उसकी देखभाल करता है, इस उम्मीद के साथ कि वह अपनी अधूरी इच्छाओं को पूरा कर सकेगा । टिक्कू (परेश रावल) का कहना है, "मुझे कुछ नहीं सुनना है ये बच्ची मेरे और अल्लाह मियां के बीच की बात है.... ये लड़की मेरे जीने का बहाना है। मेरी जिंदगी की तमन्ना है ये।"[5]

फिल्म में टिक्कू, जो स्वयं परिवार से परित्यक्त है, लावारिस बच्ची तमन्ना (पूजा भट्ट) को अपने पिता के रूप में पालता है। वह मानवता की मिसाल पेश करते हुए बेसहारा को आश्रय देता है। फिल्म के आरंभ में, टिक्कू अपनी मां के असामयिक निधन पर अत्यंत दुखी होता है, क्योंकि उसकी मां ही उसकी दुनिया थी। वह अपनी मां के जाने के बाद टूट जाता है और कभी भाग्य को तो कभी अल्लाह को कोसता है। एक रात, जब वह घर लौट रहा होता है, तो एक महिला को बच्ची को छोड़ते हुए देखता है और उसे अपने घर ले आता है। वह बच्ची को दूध पिलाते हुए सोचता है कि शायद खुदा ने उसकी मां के जाने के बाद उसे भरपाई के लिए भेजा है ।

टिक्कू की आर्थिक स्थिति बेहद दयनीय है, और वह अक्सर फुटपाथ पर रातें गुजारता है। उसके दोस्त सलीम (मनोज बाजपेयी) उसे सुझाव देते हैं कि वह बच्ची को अनाथालय में छोड़ दे, लेकिन टिक्कू अपनी अडिग जिद्द पर कायम रहता है। वह बच्ची को अपने जीवन का पुण्य मानते हुए उसे अपनाता है और समाज की नकारात्मकता की परवाह किए बिना, अपनी दिवंगत मां की याद में, तमन्ना को स्नेह और देखभाल से बड़ा करने का निर्णय लेता है।

टिक्कू के हिजड़े मित्र उसे बताते हैं कि तमन्ना पर बच्चों के खरीद-फरोख्त करने वालों की नजर है, इसलिए उसे सुरक्षित रखने के लिए उसे बोर्डिंग स्कूल भेजने का निर्णय लेता है। आर्थिक स्थिति की कमी के कारण वह अपनी बेटी के भविष्य के लिए चिंतित रहता है। एक दिन उसे स्कूल से पत्र मिलता है कि तमन्ना को स्कूल से निष्कासित किया जा रहा है । टिक्कू स्कूल जाकर अपनी बेटी को बचाने की कोशिश करता है, लेकिन उसे यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया जाता है कि वह तमन्ना का जन्मदाता नहीं है और वह एक हिजड़ा है ।

इस स्थिति से तमन्ना भी निराश होती है और टिक्कू के प्रति आक्रोशित हो जाती है। जब वह अपने घर लौटती है, तो उसे टिक्कू के नाचने वाले कपड़े दिखाई देते हैं । टिक्कू अपनी बेटी को खोने का भय महसूस करता है और उसे सच्चाई बताने का निर्णय लेता है । वह अपनी कठिनाइयों को साझा करता है और कहता है, "मैं कैसे कहता कि मैं एक हिजड़ा हूं। मुझे ऊपर वाले ने ऐसा बनाया, मेरा क्या दोष है?[6]"

तमन्ना अपने असली माता-पिता को खोजने निकल पड़ती है, लेकिन उसके पिता उसे स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं । टिक्कू और उसके साथी उसे बचाने की कोशिश करते हैं, और इस बीच फिल्म में किन्नर और स्त्री विमर्श दोनों का मुद्दा उठाया गया है । समाज में बेटा और बेटी के बीच भेदभाव को उजागर करते हुए, टिक्कू के मित्र सलीम कहते हैं, "अगर ये हिजड़ा है तो लानत है दुनिया भर के हम मर्दो पर।[7]"

इस प्रकार, 'तमन्ना' फिल्म न केवल किन्नर के संघर्ष को दर्शाती है, बल्कि स्त्री विमर्श के मुद्दों को भी सामने लाती है, जो समाज में लैंगिक असमानता और पूर्वाग्रहों को चुनौती देती है ।

**4.2.4 संघर्ष (1999)**

तनूजा चंद्रा द्वारा निर्देशित 1999 की फिल्म 'संघर्ष' एक मनोवैज्ञानिक थ्रिलर है, जिसमें समाज में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादी सोच, और हिंसा के खतरनाक परिणामों को उजागर किया गया है । फिल्म का केंद्र पात्र लज्जा शंकर पांडे, जो तृतीय लिंगी समुदाय से संबंधित है, अमरता प्राप्त करने के अंधविश्वास के चलते बच्चों की बलि चढ़ाता हुआ दिखाया गया है। अब तक वह चालीस मासूम बच्चों की हत्या कर चुका है और अपने मकसद की राह में आने वाले किसी भी व्यक्ति को खत्म करने में संकोच नहीं दिखाता है ।

कहानी सीबीआई अधिकारी रीती ओबेरॉय से शुरू होती है, जिसे लज्जा शंकर को पकड़ने का जिम्मा सौंपा जाता है । रीति, अपने डर और अतीत के आघात से जूझते हुए, एक कैदी प्रो. अमन वर्मा की मदद लेती है । अमन, जो खुद एक अपराधी है, वह लज्जा शंकर का पीछा करने में रीति की मदद करता है ।

लज्जा शंकर की विकृत मानसिकता उसे माँ काली का भक्त और उनका सेवक मानने पर मजबूर करती है । वह बच्चों की बलि चढ़ाकर काली को प्रसन्न करना चाहता है, ताकि उसे अमरता का वरदान प्राप्त हो सके । इसी सोच के तहत वह बच्चों का अपहरण और हत्या करता है । फिल्म के अंतिम दृश्यों में अमन और रीति लज्जा शंकर के चंगुल से एक बच्चे को बचाने में सफल होते हैं । इस संघर्ष में अमन अपनी जान गंवा देता है, लेकिन लज्जा शंकर को मारकर मासूमों को न्याय दिलाता है ।

**4.2.5 शबनम मौसी (2005)**

फिल्म "शबनम मौसी" भारतीय राजनीतिज्ञ और हिजड़ा कार्यकर्ता शबनम बानो के जीवन की कहानी प्रस्तुत करती है, जो समाज की कठोर परंपराओं और भेदभाव के खिलाफ लगातार संघर्ष करती हैं। 2005 में योगेश भारद्वाज द्वारा बनाई गई यह फिल्म, मध्य प्रदेश

के सोहागपुर से विधायक बनने वाली शबनम मौसी के वास्तविक जीवन पर आधारित है। यह फिल्म न केवल उनके जीवन की निजी और भौतिक चुनौतियों का चित्रण करती है, बल्कि समाज में हिजड़ा समुदाय के प्रति लोगों की सोच और राजनीतिक खेल पर भी एक गहरा व्यंग्य है।

फिल्म की शुरुआत में, शबनम के शुरुआती 25 साल के जीवन का चित्रण किया गया है, जो मुंबई से अनूपपुर तक की उनकी यात्रा को दर्शाता है। उनका जन्म एक पुलिस अधिकारी के घर में होता है, जहां जन्म के तुरंत बाद ही यह पहचान लिया जाता है कि वह एक हिजड़ा हैं। समुदाय द्वारा अपनाए जाने के बाद हलीमा नामक एक हिजड़ा शबनम का पालन-पोषण करती हैं और उसे "शबनम" नाम देती हैं । हलीमा अपने मातृत्व को पाकर कहती हैं, "हलीमा को आज तुमने वह दर्जा दिया, जो दर्जा खुदा भी देने में बेब्सता है। माँ का दर्जा हलीमा माँ तेरे इज्जत के.... गुजरेगी अम्मा ।[8]"

समय बीतने के साथ, शबनम को हिजड़ा समुदाय में पैसों के लालच के मार्ग पर धकेला जाने का दबाव भी सहना पड़ता है, लेकिन हलीमा इसके विरोध में खड़ी होती हैं और कहती हैं, "मैं इतनी गिरी नहीं हूं कि अपनी बेटी के पीठ बेच कर अपनी अपनी भूख मिटाऊँ।[9]" इसी विवाद में, हलीमा की मौत हो जाती है और उनके निधन पर शबनम को गिरफ्तार करवा दिया जाता है। बाद में, वह पुलिस से बचकर अनूपपुर गांव पहुंचती हैं, जहां कुछ गुंडों से एक लड़की को बचाती हैं, जो एक अमीर नेता के बेटे से प्रेम करती है। इस घटना के बाद शबनम का सामना उस समाज से होता है, जो उनके अस्तित्व को नकारता है। समाज की दोहरी सोच पर शबनम तंज कसते हुए कहती हैं, "मैं इस उम्मीद के साथ मार खाई थी शायद एक हिजड़े को पिटता देखकर इन मर्दों की मर्दनगी जाग जाए।[10]"

राजनीतिक दांव-पेंच के बीच, शबनम का सामना नेता रतन सिंह और उसके समर्थकों से होता है। राजनीति के छल-कपट से अनजान नहीं, शबनम खुद को डटकर हर चुनौती का

सामना करने के लिए तैयार रखती हैं और अपने विरोधियों को जवाब देती हैं, "मैं जानना चाहता हूँ राजनीति कुत्ती है या राजनेता।"[11]

समाज के साथ अपनी गहरी मित्रता और लोगों के समर्थन से शबनम राजनीतिक क्षेत्र में सफलता की ऊंचाई पर पहुंचती हैं । उनकी इस प्रगति को देखकर रतन सिंह उनसे ईर्ष्या करने लगता है और उन्हें मारने के लिए सुपारी भी देता है, लेकिन शबनम की सत्य की ताकत और उनकी आवाज के प्रभाव से मदन, जो हत्यारा बनकर आया था, उनका समर्थक बन जाता है । फिल्म का अंत शबनम की ऐतिहासिक जीत के साथ होता है, जो न केवल एक हिजड़ा की राजनीतिक सफलता को दर्शाता है, बल्कि समाज में बदलाव की उम्मीद को भी दर्शाता है, जब रतन सिंह चुनाव हार जाता है और शबनम जीत के साथ नया इतिहास बनाती हैं ।

**4.2.6 वेलकम डु सज्जनपूर (2008)**

यह एक सामाजिक व्यंग्य पर आधारित हिंदी फिल्म है, जिसका निर्देशन श्याम बेनेगल ने किया था । इस फिल्म में छोटे शहर की रोज़मर्रा की ज़िंदगी, राजनीति, और सामाजिक मुद्दों को हल्के-फुल्के अंदाज में पेश किया गया है ।

यह फिल्म सज्जनपुर नामक गाँव पर आधारित है, जिसका पुराना नाम दुर्जनपुर था और जिसे जवाहरलाल नेहरू द्वारा बदलकर सज्जनपुर रखा गया । फिल्म में सज्जनपुर के निवासियों के अकेलेपन, लिंग भेदभाव, राजनीति, जातिवाद, अंधविश्वास और भय जैसे मुद्दों को उठाया गया है । कहानी का नायक गाँव में एक पत्र लेखक है, जो अनपढ़ ग्रामीणों की सहायता करता है और उनकी प्रमुख समस्याओं को अपने शब्दों में बयां करता है ।

गाँव की हिजड़ा, मुन्नीबाई, जब सरपंच चुनाव में खड़ी होती है, तो अपने नारे और गाने भी उसी से लिखवाती है। समाज ने किन्नरों को पारंपरिक भूमिकाओं में बांध

दिया है और उन्हें केवल नाच-गान, भीख माँगने या भिक्षाटन जैसे सीमित कार्यों तक ही सीमित कर दिया है । ऐसे में जब मुन्नीबाई राजनीति में प्रवेश करती है, तो यह पितृसत्तात्मक समाज को असहनीय लगता है ।

मुन्नीबाई और उसके साथियों का मानना है कि केवल राजनीति में जाकर ही वे अपने और अपने समुदाय के जीवन को बेहतर बना सकते हैं। महादेव, जो उसके लिए चुनाव प्रचार में मदद करता है, उससे यह सवाल करता है कि उसे समर्थन किस जाति का मिलेगा–ब्राह्मण, पटेल, दलित, या मुसलमान? पर मुन्नीबाई आत्मविश्वास से कहती है कि सब लोग उसका समर्थन करेंगे । उसकी प्रतिद्वंद्वी, जमना बाई, को हराने के लिए वह पूरी जिद्द के साथ चुनाव में उतरती है ।

गाँव का एक व्यक्ति, राम सिंह, कलेक्टर को पत्र लिखवाता है जिसमें मुन्नीबाई को चुनाव लड़ने से रोकने की मांग की जाती है । वह कहता है कि "गाँव को हिजड़ा सरपंच नहीं चाहिए, और अगर मुन्नीबाई सरपंच बनती है, तो गाँव की मर्यादा समाप्त हो जाएगा"[12]। जब कलेक्टर इस बात को नजरअंदाज करता है, तो राम सिंह मुन्नीबाई के घर में तोड़फोड़ करता है और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी देता है । बेबस मुन्नीबाई महादेव से मिलकर कलेक्टर को पत्र लिखवाती है । इस पत्र में मुन्नीबाई पूरे समाज से सवाल करती है कि "आखिर क्यों हिजड़ों को इंसान नहीं समझा जाता? क्या उनके पास दिल नहीं है, क्या वे दर्द महसूस नहीं करते, और क्यों हर कोई उनसे नफरत करता है?"[13] ।

फिल्म में, कई अड़चनों के बावजूद, मुन्नीबाई को विजेता घोषित किया जाता है और बैकग्राउंड में गीत चलता है, "राजा गए, प्रजा गए आदमी आज़ाद है, अब तो प्रजातंत्र है।"[14] लेकिन चुनाव जीतने के कारण उसे मार दिया जाता है, जो इस बात को उजागर करता है कि लोकतंत्र भी कितना दूषित है ।

फिल्म के अंत में यह खुलासा होता है कि मुन्नीबाई असल में मारी नहीं गई, बल्कि वह विधायक तक बन चुकी है । उपन्यास में उसकी हत्या का वर्णन किया गया है, जबकि फिल्म में उसके साहस और दृढ़ता को आगे बढ़ते हुए दिखाया गया है । यह बदलाव फिल्म में दर्शकों को समाज की सच्चाई और किन्नरों के संघर्ष की गहराई समझाने के लिए किया गया है ।

### 4.2.7 क्वींस डेस्टिनी ऑफ डांस (2011)

क्वींस डेस्टिनी ऑफ डांस फिल्म उपेक्षित ट्रांसजेंडरों के जीवन के बारे में जानकारी देता है, ताकि लोग समाज के तीसरे लिंग के प्रति बेहतर समझ विकसित कर सकें । यह फिल्म केवल उन लोगों के लिए अनुशंसित है जो समाज के उपेक्षित वर्ग के बारे में अधिक जानना चाहते हैं ।

इस फिल्म में उन्नत हिजड़ा समुदाय की कहानी चित्रित हैं जिनका नेतृत्व उनका राणी गुरुअम्मा करती है । बडे परिवार में जन्म ली गुरुअम्मा को अपने पहचान के कारण संघर्षों का सामना करना पडता है । उसे न ही परिवार ने साथ दिया और न ही समाज । बाद में गुरुअम्मा तिरस्कृत लोगों के लिए अपने कोठे खोल दिया । बाद में कहानी मुक्ता नामक एक युवा हिजड़ा (विनीत) की माध्यम से 'हिजड़ा' समाज की कहानी को पर्द पर लाने की कोशिश की है, जो अपने समुदाय में सर्वश्रेष्ठ नर्तक और 'हिजड़ा' समाज की नेता भी रही, जिसे अन्य सभी लड़कियां आदर करती हैं । गुरु अम्मा (सीमा बिस्वास) समान रूप से प्यार और गंभीरता के साथ हिजड़ों के एक समुदाय का नेतृत्व करती हैं ।

मुक्ता और उनकी लडकियों का मुलाकत सरकारी पद पर काम करने वाले लोग से होते है । सवाल जवाब के बीच मुक्ता कहती है कि “मैडम जी आपकी हिस्टरी बिलकुल सही है पर हमारा बयोलजी एक दम गलत है, क्या करे.. न यहाँ न वहाँ , अपनी दुनिया छोड़कर

अलग दुनिया बसानी पडती है। लेकिन ऊपर वाले को भी अपनी मिस्टेक मालूम है इसलिए हमारी दुआ को पहली सुनती है[15]" आगे कहती है कि "सारी दुनिया हिजडे लोग होती है लेकिन उन लोगों के लिए समानता का अधिकार है लेकिन हमारे भारत में नहीं है[16]"।

एक दिन एक खूबसूरत लड़की नंदिनी (अर्चना गुप्ता) रहस्यमय तरीके से कोठे के सामने आती है, और गुरु अम्मा अचानक उसे पसंद करने लगती है । जल्द ही नया प्रवेशकर्ता समुदाय के भीतर आकर्षण का केंद्र बन जाता है, और मुक्ता को उससे ईर्ष्या होने लगती है, यह महसूस करते हुए कि गुरु अम्मा भी अब उसे दरकिनार कर रही हैं । मुक्ता समुदाय छोड़ देती है, और अपने घर वापस जाने की प्रयास करती है । अंततः उसे वापस आना पड़ता है क्योंकि कोई अन्य विकल्प नहीं है । इस बार मुक्ता अम्मा और नंदिनी के साथ मधुर व्यवहार करती है लेकिन उसके मन में कुछ और है । बाद में मुक्ता की वजह से नंदिनी की मौत होते हुए दिखाई देती है ।

फिल्म का अनोखापन यह था कि अनेक देशों से आई हिजड़े लोगों एक साथ दिखाने का प्रयास बखूबी पर्दे पर निभाया है । लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी द्वारा निभाया गया किरदार मानवेंद्र सिंह गोहिल से प्रेरित है, जो राजपीपला के शाही परिवार से हैं । दरअसल, कुछ वास्तविक जीवन के हिजड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए फिल्म में नज़र आता है । यह फिल्म तथ्यों के प्रति यथार्थवादी और ईमानदार होने के साथ-साथ तीसरे लिंग, जिसे 'हिजड़ा' (ट्रांस-जेंडर) कहा जाता है, उनके जीवन पर सम्मानजनक तरीके से नज़र डालती है ।

**4.2.8 रज्जो (2013)**

'रज्जो' (2013) एक ऐसी फिल्म है, जो सामाजिक रूढ़ियों, प्रेम, संघर्ष और हिजड़ा समुदाय की सकारात्मक छवि को उजागर करती है । इस फिल्म में कंगना रनौत ने मुख्य भूमिका निभाई है, जबकि महेश मांजरेकर ने एक हिजड़े, बेगम, का किरदार निभाया है ।

फिल्म की कहानी रज्जो और उसके संघर्षों के इर्द-गिर्द घूमती है, जिसमें प्रेम, समाज की हकीकत और एक वेश्या से सम्मानजनक जीवन की ओर बढ़ने की उसकी यात्रा को दर्शाया गया है ।

कहानी का मुख्य पात्र रज्जो (कंगना रनौत) एक वेश्या है, जो नागपाड़ा के कोठों पर मुजरा करती है । वह न केवल सुंदर और आकर्षक है, बल्कि अपने नृत्य से लोगों को मंत्रमुग्ध कर देती है । कोठे की देखरेख बेगम (महेश मांजरेकर) करती है, जो एक हिजड़ा है और अपने सख्त व्यक्तित्व के लिए जानी जाती है । बेगम कोठे की मुखिया है और वहां रहने वाली महिलाओं की संरक्षक की भूमिका निभाती है ।

कहानी तब मोड़ लेती है, जब एक 18 वर्षीय ब्राह्मण लड़का चंदू (पारस अरोड़ा) अपने दोस्तों के साथ नागपाड़ा के कोठे पर जीत का जश्न मनाने के लिए आता है । वहीं उसकी मुलाकात रज्जो से होती है । रज्जो का मुजरा और उसकी खूबसूरती चंदू को इतना प्रभावित करती है कि वह पहली ही नजर में उससे प्रेम करने लगता है ।

चंदू एक मध्यमवर्गीय परिवार से आता है, जो संगीत प्रेमी हैं । संगीत के प्रति चंदू का लगाव और रज्जो की कला दोनों को एक-दूसरे के करीब ले आते हैं । यह प्रेम जल्द ही गहराई में बदल जाता है, और चंदू अपने परिवार और समाज की परवाह किए बिना रज्जो से विवाह करने का फैसला करता है ।

फिल्म में बेगम का किरदार बेहद अहम है । वह एक ऐसा हिजड़ा है, जिसे समाज आमतौर पर हीन दृष्टि से देखता है, लेकिन वह अपने कोठे पर सख्ती और न्यायपूर्ण तरीके से राज करती है । बेगम एक व्यावहारिक, सहानुभूतिपूर्ण और समझदार इंसान के रूप में सामने आती है । जब उसे चंदू और रज्जो के प्रेम के बारे में पता चलता है, तो वह बिना किसी संकोच के उनकी मदद करने का फैसला करती है ।

बेगम का यह कदम समाज में प्रचलित उन परंपरागत विचारों के खिलाफ है, जो वेश्याओं और हिजड़ों के जीवन को अंधकारमय और अमानवीय समझते हैं। आमतौर पर युवाओं को वेश्याओं से विवाह करने पर ताने मारने वाली बेगम खुद चंदू और रज्जो की शादी में सहायता करती है। वह इस रिश्ते को समाज की आलोचनाओं और रज्जो के अतीत के कटु अनुभवों से सुरक्षित रखने के लिए पूरी कोशिश करती है।

**4.2.9 लक्षमी बम (2018)**

फिल्म "लक्ष्मी बम" हिजड़ों के अस्तित्व की पहचान, परिवार की उपेक्षा, और समाज में स्वीकार्यता की कहानी प्रस्तुत करती है । फिल्म का केंद्र पात्र लक्ष्मी है, जो एक किन्नर के रूप में जन्म लेती है । बचपन में उसके स्त्रैण गुणों के कारण उसके पिता उसे घर से बाहर निकाल देते हैं । लक्ष्मी अपने पिता से विनती करती है कि उसे समझें और सहारा दें, क्योंकि उसके जन्म की जैविक सच्चाई पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। लक्षमी कहती है कि "पापा... मुझे इस तरह न मारा करो । मैं कोशिश करती हूँ पर बदल नहीं पाती हूँ। मैं ऐसा पैदा हुआ तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । मैंने इंटरनेट पर भी पढ़ा है ऐसी हरकतें हार्मोन की वजह से होती है । मुझे घर से मत निकालिए[17]" परंतु इसके बावजूद भी , उसे मार-पीट कर घर से बाहर निकाल दिया जाता है ।

लक्ष्मी का जीवन संघर्षों से भरा होता है। दर-दर भटकने के बाद, उसे रहीम चाचा नाम के नेक इंसान का सहारा मिलता है । रहीम न केवल उसे अपनाते हैं, बल्कि उसका नाम "कंचन" रखकर उसे एक नई पहचान देते हैं । रहीम चाचा का मानना है कि कंचन शिव और शक्ति का प्रतीक है—एक अद्भुत चमत्कार। लक्ष्मी, जो स्वयं पढ़ाई का अवसर नहीं पा सकी थी, अपने जैसी ही एक किन्नर बच्ची गीता को पढ़ाने का संकल्प लेती है । गीता को स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए लक्ष्मी और रहीम चाचा को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। लेकिन गीता न केवल पढ़ाई में उत्कृष्ट प्रदर्शन करती है, बल्कि

स्कूल की टॉपर बनती है। उसे विदेश में मेडिकल की पढ़ाई के लिए स्कॉलरशिप मिलती है, जिसे वह कृतज्ञता के साथ स्वीकार करती है।

वार्षिक कार्यक्रम के दौरान कंचन अपनी पीड़ा और समाज के प्रति अपने विचार व्यक्त करती है। वह कहती है कि किन्नरों को समाज में जगह दी गई है, लेकिन उन्हें अपने परिवार में स्वीकार्यता नहीं मिलती । कंचन अपने जीवन के संघर्ष और परिवार द्वारा किए गए तिरस्कार को साझा करती है । वह अपील करती है कि लोग अपनी संतानों को स्वीकार करें और उन्हें शिक्षित करें, ताकि उनका जीवन बेहतर हो सके । फिल्म समाज को एक महत्वपूर्ण संदेश देती है। यह किन्नरों की अस्मिता, उनके संघर्ष, और समाज में उनके अधिकारों की बात करती है। साथ ही, यह परिवारों से अनुरोध करती है कि वे अपनी संतानों को त्यागने के बजाय उन्हें समझें और उनका साथ दें।

**4.2.10 खेजड़ी (2021)**

'खेजड़ी' की कहानी एक गहन रूप से भावनात्मक और सामाजिक रूप से प्रासंगिक कथा है, जो एक इंटरसेक्स व्यक्ति के जीवन, संघर्ष, और आत्म-खोज की यात्रा को उजागर करती है । फिल्म राजस्थान के एक रेगिस्तानी गाँव की पृष्ठभूमि में स्थापित है और समाज की अज्ञानता और पूर्वाग्रह के बीच खेजड़ी के अदम्य साहस को चित्रित करती है ।

खेजड़ी, एक इंटरसेक्स बच्ची, का पालन-पोषण उसके पिता ने एक कठोर समाज से बचाने के लिए चार दीवारी के भीतर किया । पिता ने उसे यह विश्वास दिलाया कि यदि उसने घर से बाहर कदम रखा, तो उसे "खतरनाक बीमारी" हो जाएगी । यह मिथक न केवल खेजड़ी को बाहरी दुनिया से अलग-थलग कर देता है, बल्कि उसे अपने अस्तित्व और पहचान पर भी सवाल उठाने के लिए मजबूर करता है । किसी पक्षी को हमेशा पिंजरे में बंद नहीं रखा जा सकता । खेजड़ी का मन एक अनजान दुनिया को देखने और समझने के

लिए उत्सुक है । उसके अंदर यह जानने की इच्छा जन्म लेती है कि समाज क्यों उसे अलग समझता है और उसकी पहचान को क्यों नकारता है ।

फिल्म कई स्तरों पर सवाल उठाती है । यह न केवल खेजड़ी के अस्तित्व और पहचान के संघर्ष को सामने लाती है, बल्कि समाज के द्विआधारी लिंग और यौनिकता की समझ को भी चुनौती देती है । हमारा अधिकांश दृष्टिकोण लिंग और यौनिकता के बारे में उन चिकित्सा पुस्तकों से आता है जो वैकल्पिक पहचानों के प्रति अंधी होती हैं। फिल्म इन सीमाओं और रूढ़ियों को प्रश्न के कटघरे में खड़ा करती है ।

खेजड़ी और पिता का संबंध :फिल्म खेजड़ी और उसके पिता के जटिल संबंधों को गहराई से चित्रित करती है । खेजड़ी के पिता, जो एक डॉक्टर हैं, उसकी पहचान को समझने और स्वीकार करने में संघर्ष करते हैं । वे चिकित्सा पुस्तकों और समाज द्वारा स्थापित मानदंडों से बंधे हुए हैं ।

एक मार्मिक दृश्य में, खेजड़ी अपने पिता की किताबों में अपनी पहचान का उत्तर तलाशती है । यह न केवल खेजड़ी के आत्म-संघर्ष को दर्शाता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि कैसे चिकित्सा और सामाजिक धारणाएँ अक्सर इंसानियत और समझ के आड़े आ जाती हैं । पिता की अस्वीकृति का भावनात्मक प्रभाव खेजड़ी पर गहरा पड़ता है । फिल्म में पुनर्मिलन का क्षण भी है, जब पिता अपनी पूर्व धारणाओं को छोड़कर खेजड़ी को स्वीकारने की दिशा में कदम बढ़ाते हैं । यह पुनर्मिलन सच्चे प्रेम और पारिवारिक बंधनों की शक्ति को उजागर करता है।

**4.2.11 गगूबाई काठियावाड़ी (2021)**

"गंगूबाई" एक विचारोत्तेजक और प्रभावशाली फिल्म है जो विभिन्न राजनीतिक व सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डालती है ।यह फिल्म हुसैन जैदी की किताब 'माफिया क्वींस

ऑफ मुंबई' पर आधारित है और इसका निर्देशन संजय लीला भंसाली ने किया है। फिल्म लिंग - भेदभाव, मानव तिरस्कार और समाज में महिलाओं के प्रति शोषण जैसे विषयों की पड़ताल करती है । गंगूबाई फिल्म सामाजिक मानदंडों को चुनौती देती है और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के साथ होने वाले अन्याय के बारे में जागरूकता बढ़ाती है। फिल्म की मूल कथा है कि वेश्यावृत्ति में बेची गई एक संपन्न परिवार की लड़की की सच्ची कहानी, जो मुंबई की तथाकथित "माफिया क्वीन" बन गई ।

यह फिल्म 1960 के दशक की सामाजिक कार्यकर्ता गंगूबाई कोठेवाली की बायोपिक के आधार पर बन गई फिल्म है । फिल्म में गंगूबाई अपने वेश्यालय को उपयुक्त सुविधाएं के साथ विस्तार करने के लिए प्रयास करते हुए नज़र आता है । गंगूबाई को वेश्यावृत्ति चुनने के लिए मजबूर किया गया, लेकिन बाद में उन्होंने इस व्यापार को सम्मानजनक दर्जा देने की कोशिश की । उन्होंने कभी भी महिलाओं को उनकी मर्जी के बिना इस पेशे में आने की इजासत नहीं दी और उन्होंने कई बच्चों और लड़कियों को भी इस अवैध व्यापार से बचाया । भारत में यौनकर्मियों के लिए अधिकारों और न्याय की मांग के लिए वह एक बार पूर्व भारतीय प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू से भी मिलती हुई फिल्म में दिखाती है ।

### 4.2.12 चंडीगढ़ करे आशिकी (2022)

"चंडीगढ़ करे आशिकी", अभिषेक कपूर द्वारा निर्देशित एक संवेदनशील और विचारोत्तेजक रोमांटिक फिल्म है, जिसमें आयुष्मान खुराना (मनविंदर "मनु" मुंजाल) और वाणी कपूर (मानवी बरार) मुख्य भूमिकाओं में हैं। फिल्म प्रेम, पहचान, और समाज की रूढ़ियों पर सवाल उठाती है। यह कहानी मानवी की आत्म-खोज और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष पर आधारित है, जो एक ट्रांसजेंडर महिला के रूप में अपने जीवन को स्वीकार कर आगे बढ़ने का साहस दिखाती है।

मनु, एक फिटनेस उत्साही, चंडीगढ़ में अपना जिम चलाता है और हर साल होने वाली बॉडीबिल्डिंग प्रतियोगिता जीतने की तैयारी में लगा रहता है । उसकी ज़िंदगी तब बदल जाती है, जब उसकी जिम में मानवी नामक, एक ज़ुम्बा प्रशिक्षक के रूप में शामिल होती है । मानवी खूबसूरत, आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी महिला है, जो अपनी पहचान के लिए मजबूती से खड़ी है । दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, और जल्द ही उनका रिश्ता गहराने लगता है। लेकिन जब मनु मानवी को प्रपोज करता है, तो मानवी उसे एक दर्दभरे सच से अवगत कराती है—वह एक ट्रांसजेंडर महिला है । यह सच्चाई सुनने के बाद मनु का जीवन उलट-पलट हो जाता है ।

मनु की शुरुआती प्रतिक्रिया आक्रोश और असहजता से भरी होती है । लेकिन, धीरे-धीरे वह मानवी के जीवन और संघर्षों को समझने की कोशिश करता है । वह न केवल मानवी के प्रति अपने नजरिए को बदलता है, बल्कि समाज और अपने परिवार से भी लड़ाई लड़ता है, ताकि अपने प्यार को स्वीकार कर सके ।

## 4.3 थर्ड जेंडर की सामाजिक संघर्ष एवं समस्याएँ–हिन्दी फिल्मों में

'संघर्ष' मानव संबधी में सतत रहने वाली एक प्रकिया है । वैयक्तिक असहयोग के कारण समाज में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है । अमेरिकी मानवविज्ञानी जॉन फिलिप गिलिन के अनुसार- "संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी के प्रति प्रत्यक्षतः हिंसात्मक तरीके अपनाकर या उसे हिंसात्मक तरीका अपनाने की धमकी देकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है[18]" । सामाजिक जीवन में वर्ग संघर्ष भी एक उल्लेखनीय घटना है। कार्ल मार्क्स ने इस प्रकार के संघर्ष पर अधिक बल दिया है। समाज में दो वर्ग क्रमशः 'शोषक और 'शोषित' विरोधी वर्ग होते हैं। जब शोषक वर्ग की शोषण नीति असहनीय हो जाती है, तब एक स्तर पर इन दोनों वर्गों में संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। समाज से अलग रहने वाले थर्ड जेंडर समूह भी इस संघर्ष से पीडीत  है।

एक नवीन विषय के रूप में समाजशास्त्र के उद्भन विकास एवं परिवर्तन की पृष्ठभूमि में 'सामाजिक समस्या की अवधारणा' ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है समाजशास्त्र का विकास समस्यामूलक परिवेश एवं परिस्थितियों का अध्ययन करते एवं इनका निराकरण करने के प्रयासों के रूप में हुआ है । वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन अति तीव्र गति से हो रहा है। इसलिए भिन्न भिन्न समाजों में सामाजिक समस्याओं की प्रकृति एवं स्वरूप भी अलग- अलग पाये जाते हैं । वर्तमान समय में भारतीय समाज अनेक समस्याओं से पीडीत है, जिनमें से प्रमुख है अल्पसंख्यकों के प्रति शोषण, जहाँ पर थर्ड जेंडर की बात आती है । तथाकथित सभ्य समाज और थर्ड जेंडर समुदाय के बीच हमेशा विभाजन की लकीर कायम है । हर थर्ड जेंडर अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है । थर्ड जेंडर के जीवन की समस्याओं और संघर्षों को लेकर पूरे विश्व में विमर्श चल रहा है । सिनेमा का योगदान भी इस दिशा में महत्वपूर्ण साबित हुआ है।

हमारे समाज के पुंसवाद लोग जो खुद को समाज का नेता कहते हैं, उन्होंने थर्ड जेंडर की स्थिति को और बदतर बना दिया है । उन्हें थर्ड जेंडर के लोग सड़कों पर नाचते-गाते और ताली बजाते तो दिखते हैं लेकिन उन्हें उनके अंदर का दर्द, उनकी आंखों के आंसू, उनकी परेशानियां, उनकी जीवनशैली, उनका संघर्ष, उनकी जीने की इच्छा, उनका गुस्सा कुछ नहीं दिखता है । अगर उन्हें कुछ दिखता है तो बस उनके क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक से सने दांत, उनके चीखते-चिल्लाते चेहरे जिन्हें वो चंद रुपयों की लालच में रंग देते हैं ।

जैसी फिल्में प्रदर्शित हुईं, जो अपने समय में दर्शकों की भारी भीड़ जुटा सकीं, और जिन्होंने ट्रांसजेंडर (मुख्यतः ट्रांस- वूमन) पात्र को मनोरोगी, हिंसक, अपराधी या हास्यास्पद रूपों में प्रदर्शित किया है । विषम लिंगी पुरुष - दृष्टि ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों व समुदाय के जीवन, आकांक्षाओं, संवेदनाओं, पीड़ाओं व संघर्षों को समझने के बजाए उनका अपराधीकरण किया है । यह अध्याय इन फिल्मों के माध्यम से सिनेमा में प्रदर्शित ट्रांसजेंडर चरित्र का

विश्लेषण प्रस्तुत करता है और सिनेजगत में काबिज विषमलिंगी पुरुष – दृष्टिकोण को परिप्रेक्ष्य पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, के आधार पर प्रश्नांकित करता है ।

### 4.3.1 सामाजिक समस्याएँ

ट्रान्स जेंडर समुदाय का समाज में जो हाशियाकरण है वह सिनेमा जगत में भी प्रतिबिंबित होता है । सामाजिक व्यवस्था ने ट्रांसजेंडर होने को बेमतलब और अस्वीकार्य बना दिया है, जो केवल भौतिक या सामाजिक सीमाओं तक सीमित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना में गहराई से धंसा हुआ है। इसी मानसिकता के कारण, ट्रांसजेंडर होना अपने आप में अस्वीकृति और अदृश्यता का प्रतीक बन गया है। समाज की स्थापित व्यवस्थाएँ उनकी पहचान को सीमित करती हैं, और यही सीमितता सिनेमा के प्रस्तुतिकरण में भी दिखाई देती है। इस चित्रण में न केवल उनके संघर्षों की अनदेखी होती है, बल्कि उनकी मानवता को भी नजरअंदाज किया जाता है, मानो उनका अस्तित्व ही समाज के लिए विरोधाभास हो। इन संघर्षों और समस्याओं का प्रभाव फिल्मों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे-

#### 4.3.1.1 वेश्यावृत्ति व्यवसाय का चित्रण

वेश्यावृत्ति एक ऐसा सामाजिक विषय है जो प्राचीन समय से लेकर आज तक बहस और चर्चा का केंद्र रहा है। वेश्यावृत्ति का मूल कारण अक्सर गरीबी, शोषण, और असमान सामाजिक संरचना से जुड़ा होता है। इसे "देह व्यापार" या "यौन व्यवसाय" के रूप में भी संदर्भित किया जाता है। थर्ड जेंडर समुदाय को सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक अस्थिरता और रोजगार के अभाव ने उस मोड़ पर ला खड़ा किया है, जहाँ उन्हें जीवनयापन के लिए वेश्यावृत्ति जैसे कठिन और अपमानजनक मार्ग अपनाना पड़ते हैं।

1991 में निकली ‘सड़क’ में वेश्यवृत्ती की धंधा चलाने वाली महाराणी युवतियों को बलात्कार, अपहरण, अनैतिक व्यवहार तथा अन्य अपराधिक कृत्यों का शिकार बनाती है । और उन्हें यौन- अवैध संबध के लिए भी बाध्य किया जाता है । ‘दरमियाँ’ में केन्द्रपात्र इम्मी

को देह का धंधा चलानेवाली बिरादरी में चंपा (हिजडा) ले जाती है, जहाँ उसे यौन शोषण सहना पड़ता है और अमानवीयता का सामना करना होता है । फिल्म 'क्वीन: डेस्टिनी ऑफ डांस' में वेश्यावृत्ति के धंधे की कठोर वास्तविकता को व्यक्त करते एक मध्य संवाद में सहपात्र कहता है कि "हमारे जिस्म का मोल तो सब लगाते हैं, पर हमारी आत्मा की पीड़ा कोई नहीं समझता,[19]" वेश्यावृत्ति में लगे लोगों के दर्द और उनके प्रति समाज के अमानवीय रवैये को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है ।

**4.3.1.2 गलत और गैरकानूनी रास्तों में फंसा हिजडा समाज**

हिजड़ा समुदाय समाज का वह वर्ग है, जिसे भेदभाव और अस्वीकार्यता के कारण मुख्यधारा से धकेल दिया गया है । शिक्षा और रोजगार की कमी उन्हें वेश्यावृत्ति या भीख मांगने जैसे गैरकानूनी रास्तों पर जाने को मजबूर करती है । यह उनकी पसंद नहीं, बल्कि सामाजिक उपेक्षा का नतीजा है । अपमान और तिरस्कार ने इन्हें सम्मानजनक जीवन से वंचित कर दिया है।

फिल्म 'तमन्ना' में टिक्कु आर्थिक तंगी के कारण न चाहते हुए भी लोगों के घर नाचने के लिए जाने को मजबूर होता है, जहाँ लोग उसे केवल घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं । उपर्युक्त फिल्मों में, हिजड़ा वर्ग का जीवन मुख्यतः वेश्यावृत्ति, नाच-गाना और भीख मांगने जैसे कार्यों में उलझा हुआ दिखाया गया है। ये फिल्में उनके संघर्षों और अस्तित्व की लड़ाई को दर्शाने का प्रयास करती हैं, लेकिन अक्सर उनकी स्थिति को केवल हाशिए पर रहने वाले लोगों के संघर्ष तक सीमित कर देती हैं।

**4.3.1.3 अमानवीयता और समाज की कठोरता**

समाज की अमानवीयता और संवेदनहीनता आधुनिक युग की सबसे बड़ी त्रासदियों में से एक है। अमानवीयता सिर्फ़ हिंसा और क्रूरता में ही नहीं दिखती, बल्कि ऐसी नीतियों और

प्रथाओं में भी दिखती है जो कमज़ोर और वंचित लोगों को उनके अधिकारों से वंचित करती हैं। समाज की संवेदनहीनता तब दिखती है जब वह दुख और अन्याय को नज़रअंदाज़ कर देता है। थर्ड जेंडर समुदाय समाज की उपेक्षा, भेदभाव और हिंसा के कठोर प्रहार झेलते हुए मुख्यधारा से परे धकेल दिए जाते हैं । परिवार, शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य जैसे जीवन के मूलभूत क्षेत्रों में उन्हें अमानवीय व्यवहार और अन्याय का सामना करना पड़ता है, मानो उनकी अस्मिता ही प्रश्नचिह्न बन गई हो।

फिल्म "सड़क" का यह संवाद महारानी के चरित्र की गहराई और उसके भीतर छिपे दर्द को मार्मिक रूप से व्यक्त करता है। यह संवाद सिर्फ शब्दों का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि समाज की कठोर वास्तविकताओं और नियति की निर्ममता का एक कड़वा सत्य है। जब महारानी कहती है, "क्या रो रही है? तमाशा करती है... अपनी तकदीर नहीं बदलती, समझे क्या?"[20], तो यह शब्द उनकी अपनी असहायता और नियति से हुए समझौते की दास्तां है। उनका यह कथन समाज द्वारा हाशिए पर धकेले गए उन सभी लोगों की ओर इशारा करता है, जो पहचान, स्वाभिमान और जीवन के लिए संघर्ष करते हैं, लेकिन अंततः सामाजिक ढांचे और अपने दुर्भाग्य से हार मान लेते हैं। जब वह कहती है, "मैं भी बहुत रोई थी जब लोगों ने मुझे नामर्द कहा, हिजड़ा कहा!" [21], तो यह पीड़ा सिर्फ उनके चरित्र की नहीं, बल्कि एक पूरे वर्ग की सामूहिक वेदना बन जाती है । उनके शब्द उस नियति को स्वीकारने की मजबूरी को उजागर करते हैं, जो उनकी अपनी नहीं थी, बल्कि समाज ने उन्हें दी थी । यह संवाद नियति, संघर्ष और सामाजिक असमानता के त्रिकोण में कैद इंसानी जिंदगियों का गहरा और तीखा प्रतिबिंब है।

#### 4.3.1.4 हिजड़ा समाज के लिए कलंक और नकारात्मक छवि

थर्ड जेंडर अस्वीकृति का मूल कारण समाज की अज्ञानता और रूढ़िवादी सोच है, जिसने उन्हें हमेशा "अलग" समझा । इस समस्या को और गंभीर तब होता है जब सिनेमा

जैसे सशक्त माध्यम में भी उन्हें नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है । हिंदी सिनेमा में थर्ड जेंडर का चित्रण लंबे समय से रूढ़िवादी और नकारात्मक रूप में होता आ रहा है । फिल्मों ने अक्सर उन्हें या तो मजाक का पात्र बनाया है या खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे उनकी वास्तविक समस्याओं और संघर्षों को अनदेखा कर दिया गया है । उदाहरण के लिए, फिल्म "सड़क" में महारानी और "संघर्ष" में लीला पंडित जैसे किरदारों को खलनायक के रूप में दिखाया गया, जहां थर्ड जेंडर को क्रूर और अनैतिक रूप में चित्रित किया गया । इन पात्रों ने समाज में उनके प्रति घृणा और डर को और मजबूत किया, जिससे उनके प्रति भेदभाव और उपेक्षा बढ़ी ।

'महारानी' को खलनायिका के रूप में पेश करना हिजड़ा समुदाय के लिए एक अपमान था । यह एक नया चित्रण था जो हिजड़ों के पारंपरिक चित्रण से अलग था, महारानी का किरदार फिल्म की शुरुआत से लेकर अंत तक महारानी बहुत ही चतुर और चालाक और उन्होंने हिजड़ों की स्थिति को लोगों के सामने लाने की भी कोशिश की है ।

लज्जा शंकर का किरदार हिजड़ा समुदाय के लिए नकारात्मकता की छवि पेश करता है। फिल्म में उसे क्रूर, विकृत, और हिंसक रूप में दिखाया गया है, जो बच्चों की हत्या जैसे जघन्य अपराध करता है । उसका औरत का वेश धारण करना और समाज में एक साधारण पुरुष की तरह रहकर अपने शिकार की तलाश करना, तृतीय लिंगी समुदाय के प्रति समाज की धारणा को और खराब करता है।

#### 4.3.1.5 पुंसवादी समाज का चित्रण

पुंसवादी समाज, एक ऐसा समाज है, जहाँ पुरुषों को शक्ति और अधिकार का केंद्र माना जाता है। यह पितृसत्तात्मक सोच और व्यवस्था पर आधारित है । जहां पुरुषों को श्रेष्ठ और स्त्रियों को कमजोर, अधीनस्थ या केवल सेविका के रूप में देखा जाता है । इस विचारधारा ने न केवल स्त्रियों की पहचान को सीमित किया, बल्कि मानवता की व्यापकता

को भी संकीर्ण कर दिया है । इस व्यवस्था में थर्ड जेंडर का स्थान और भी दयनीय है। पितृसत्तात्मक समाज ने न केवल उनकी पहचान को अपमान और तिरस्कार के साथ जोड़ा, बल्कि उनके अस्तित्व को भी एक सामाजिक "त्रुटि" के रूप में देखा है । इसका परिणाम यह हुआ है कि थर्ड जेंडर को समाज में स्वीकृति, समानता और गरिमा से पूरी तरह वंचित रखा गया है । इस पितृसत्तात्मक सोच और थर्ड जेंडर की अस्वीकृति का मार्मिक चित्रण फिल्म "दरमियान" में देख सकते हैं । प्रस्तुत फिल्म में जीनत बेगम और इम्मी की गैर-मर्दाना यौन पहचानों के जरिए पितृसत्ता के स्थापित मूल्यों और मान्यताओं को चुनौती देने के संदर्भ में हास्य और पैरोडी दृश्यों का रचनात्मक प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है । इनके जरिए निर्देशक ने पितृसत्ता की विसंगतियों को सामने लाने का भी सफल प्रयास किया है । फिल्म का वह दृश्य अविस्मरणीय बन पड़ा है जब बच्चे समुद्र किनारे पेशाब करने की होड़ कर रहे होते हैं । इस मर्दाना खेल में जब एक बच्चा इम्मी अपने पुरुष लिंग के विकसित न होने के कारण इस मर्दाना खेल के मानकों पर खरा नहीं उतर पाता है तो दूसरे बच्चे एक-दूसरे से कहते हैं कि वह सामान्य लड़का नहीं है क्योंकि उसके पास लिंग ही नहीं है । इम्मी को जीवन भर अंग न होने या उसके ठीक से विकसित न होने की कीमत चुकानी पड़ती है । बचपन से ही उसके अंदर भरी गई यह हीन भावना उसके अंदर असमान होने की कुंठा पैदा करती है । बाद में जिस दृश्य में इम्मी की मर्दानगी की परीक्षा होती है, उसमें सेक्स वर्कर (वेश्या) महिला इम्मी का लिंग गायब पाकर उसे ताना मारती है । यही पर इम्मी कहती है कि , "मैं पुंसवादी समाज के दायरों में फिट नहीं हो सकता, क्योंकि ये दायरे मेरे अस्तित्व को नकारते हैं[22]," उसकी असहायता और विरोध दोनों को व्यक्त करता है । उस संदर्भ में हास्य के साथ-साथ पुरुषों के पुरुषोचित अहंकार पर भी प्रहार है। यह दृश्य कामुकता की परम्परागत छवियों को तोड़ता है। सेक्स वर्कर महिला के चेहरे पर पुरुष और महिला के बीच होने वाली यौन क्रिया को लेकर कोई डर, संकोच या पश्चाताप नहीं दिखता, जबकि इम्मी के चेहरे पर स्त्रीत्व के द्योतक माने जाने वाले ये सारे भाव दिखते

हैं। इम्मी की यौन निष्क्रियता के विपरीत उस महिला की यौन क्रिया कामुकता के पुरुष मानकों को उलट कर रख देती है।

### 4.3.1.6 सामाजिक स्वीकृति के लिए संघर्ष

सामाजिक स्वीकृति के लिए संघर्ष एक ऐसी यात्रा है, जो मानवीय अस्तित्व के सबसे गहरे आयामों को छूती है । यह केवल अपनी पहचान को व्यक्त करने की लड़ाई नहीं है, बल्कि उन अदृश्य बाधाओं को तोड़ने का प्रयास है, जो समाज की रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों से निर्मित हैं।

पूनम सिन्हा द्वारा निर्मित 'तमन्ना' फिल्म थर्ड जेंडर के मानवीय पक्ष को प्रस्तुत करती है। फिल्म में परेश रावल ने तमन्ना का किरदार निभाया, जो एक हिजड़ा है और एक परित्यक्त बच्ची को गोद लेता है । तमन्ना का संवाद, "हम इंसान नहीं हैं क्या?"[23], यह उनकी पीड़ा और समाज से उनके अधिकारों की मांग को दर्शाता है । यह फिल्म समाज को यह सिखाने का प्रयास करती है कि थर्ड जेंडर भी समान भावनाओं और अधिकारों के साथ जीने के योग्य हैं। फिल्म 'शबनम मौसी' (अशुतोष राणा) का किरदार राजनीति में कदम रखता है और समाज में अपनी जगह बनाने के लिए लड़ता है । फिल्म का संवाद, "मैं एक इंसान हूं और मुझे भी जीने का हक है,"[24] थर्ड जेंडर की सामाजिक स्वीकार्यता की मांग का सार है ।

### 4.3.1.7 यौन शोषण

यौन शोषण एक विकट सामाजिक समस्या है, जिसमें किसी व्यक्ति की इच्छा और सहमति की अवहेलना कर, उसके साथ यौन प्रकृति का अनुचित व्यवहार किया जाता है। यह एक ऐसा घाव है जो न केवल शारीरिक स्तर पर चोट पहुंचाता है, बल्कि मानसिक और सामाजिक ताने-बाने को भी गहरे तक झकझोर देता है । यौन शोषण के संदर्भ में थर्ड जेंडर

वर्ग न केवल सबसे असुरक्षित है, बल्कि उनके प्रति समाज की गहरी जड़ें जमाए पूर्वाग्रह और भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण उन्हें शोषण के अंधे कुचक्र में और गहराई तक धकेल देता है। यह केवल उनकी पहचान को चुनौती नहीं देता, बल्कि उनके अस्तित्व और गरिमा पर भी अमिट आघात करता है ।

फिल्म 'दरमियाँ' इम्मी का जीवन लगातार समाज की क्रूरता का सामना करता है। हिजड़ा समाज में शामिल होने के बाद भी, जब वह देह व्यापार का हिस्सा बनने से इंकार करता है, तो पुरुषवादी समाज उसकी भावनाओं और शरीर को चीरने-नोचने का कोई अवसर नहीं छोड़ता । "तू है क्या? न औरत, न मर्द। तुझे सहना ही पड़ेगा। तू तो इसी लायक है।[25]" यह दृश्य न केवल उनकी पहचान के साथ जुड़े संघर्ष को उजागर करता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि समाज की क्रूर मानसिकता और भेदभावपूर्ण रवैया किस हद तक उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में धकेल देता है ।

### 4.3.1.8 सामंती व्यवस्था

'वेलकम टु सज्जनपूर' फिल्म में सामंती व्यवस्था समाज में गहरी असमानता और शोषण को जन्म देने वाला एक अन्यायपूर्ण ढांचा है। इस प्रणाली में भूमि और संसाधनों पर शासक वर्ग, जैसे जमींदार, राजा या सामंत, का पूर्ण अधिकार होता है, जबकि मेहनतकश किसान और मजदूर, जो वास्तव में उत्पादन का आधार हैं, न्यूनतम आवश्यकताओं तक सीमित रहते हैं। शासक वर्ग अपनी सत्ता और संपत्ति के बल पर उत्पादन का अधिकांश लाभ अपने पास रखता है, जबकि किसान और मजदूर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं। यह व्यवस्था केवल आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं है, बल्कि मेहनतकश वर्ग को सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से भी वंचित कर देती है। सामंती ढांचा न केवल आर्थिक असमानता का प्रतीक है, बल्कि यह मानव गरिमा और स्वतंत्रता को भी ठेस पहुंचाता है, जिससे समाज में कुछ लोगों के पास सब कुछ होता है और बहुसंख्यक वर्ग के

पास कुछ भी नहीं। यह व्यवस्था न केवल मेहनत करने वालों के श्रम का शोषण करती है, बल्कि उनकी संभावनाओं और आशाओं को भी कुचल देती है, जिससे वे पीढ़ी दर पीढ़ी संघर्ष में जकड़े रहते हैं।

फिल्म सामंती मानसिकता को बाहुबल के माध्यम से गाँव की राजनीति पर कब्जा जमाने की कोशिशों को दर्शाती है। जहाँ मुन्नीबाई अपने गीत के लिए मेहनताने के तौर पर महादेव को 5 रुपये देती है, वहीं रामसिंह न केवल महादेव से मुफ्त में पत्र लिखवाता है बल्कि धमकी भी देता है, अपशब्द भी बोलता है। सामंती व्यवस्था के समर्थक, चाहे बड़े हों या छोटे, सभी अपनी ही धुन में दूसरों का शोषण करते हैं।

**4.3.2 पारिवारिक समस्याएँ**

परिवार समाज की सबसे श्रेष्ठतम ईकाई है। हर एक व्यक्तित्व रूपायन की नीव परिवार ही है। परिवार समाज का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। माता का अपने संतानों से संबध घनिष्ठ आत्मीय और अलौकिक वात्सल्यपूर्ण होता है। माता के हृद्य सदैव अपनी संतानों की खुशहाली और मंगल कामना हेतु पार्थनस्त रहता है, थर्ड जेंडर के अस्तित्व का संघर्ष सिर्फ समाज तक सीमित नहीं है; यह उनकी अपनी मूल इकाई, यानी परिवार, से ही आरंभ होता है। पारिवारिक संरचना, जो हर व्यक्ति के जीवन में सुरक्षा, प्रेम और स्वीकृति का पहला आधार होती है, थर्ड जेंडर व्यक्तियों के लिए अक्सर ठुकराए जाने, अपमानित किए जाने और अस्वीकृति का स्थल बन जाती है। लैंगिक पहचान के प्रति पारंपरिक सोच और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के चलते, थर्ड जेंडर के व्यक्तित्व को परिवार द्वारा नकारा जाना या उनके साथ भेदभाव करना आम बात है।

**4.3.2.1 परिवार से अस्वीकार्यता और तिरस्कार**

परिवार से तिरस्कार, किसी भी व्यक्ति के जीवन में सबसे गहरा आघात है। परिवार, जिसे सुरक्षा, अपनापन और भावनात्मक समर्थन का स्तंभ माना जाता है, जब अस्वीकार

करता है, तो वह व्यक्ति को असहनीय मानसिक और भावनात्मक पीड़ा के अंधकार में ले जाता है। थर्ड जेंडर के लिए परिवार से नकारा जाना सिर्फ़ भावनात्मक आघात नहीं होता बल्कि यह उनके पूरे जीवन को अस्थिर कर देता है। अपनी पहचान को लेकर परिवार से नकारा जाना उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से भी हाशिए पर धकेल देता है। हर चुनौती में सबसे पहला सहारा देने वाला परिवार जब उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर देता है तो वे खुद को अकेला और असुरक्षित महसूस करते हैं।

फिल्म 'शबनम मौसी' में केन्द्र पात्र 'शबनम' को परिवार द्वारा अस्वीकार कर दिया, जो किसी भी व्यक्ति के जीवन में बड़ी त्रासदी होती है। यह त्याग उसे अकेले और असुरक्षित बनाता है, जिससे उसे जीवन की हर कठिनाई से अकेले ही जूझना पड़ता है। फिल्म 'लक्ष्मी बम' में भी यह समस्या देखी जा सकती है। फिल्म के एक दृश्य में शुक्रिया अदा करना  के बाद लक्ष्मी ने उसकी विचार को प्रकट करने की कोशिश करते हुए कहती है कि "सरकार ने हमारी बहुत मदद की है किन्नर, हिजड़ा, छक्का, लोग अलग-अलग नाम से पुकारते है। जब दुनिया भर हमें समाज की जगह दी गई है तो खुद के घर में क्यों नहीं। बचपन में मुझे मार-मार के घर से बाहर निकाल दिया था। अपनी खुद की संतान होने के बावजूद मुझे सड़क पर दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिया। अगर उन्होंने मेरे साथ दिया होता, मुझे अच्छी तरह समझा होता तो, आज मैं भी एक डॉक्टर होती। मेरी क्या गलती थी, सिगरेट पीती थी, दारू पीती थी, जुआ खेलता थी या नशा करती थी, यदि यह सब किया जाता तो गलत था। पैदा ही ऐसे हुई उसमें मेरी क्या गलती है। गीता को भी घर से निकाल दिया गया था। आज उसने नाम रोशन किया।  इतना ही नहीं दुनिया में हमारे जैसे कितने लोग थे जो हिजड़े थे? फिर भी उन लोगों अपनी मेहनत से लगन से नाम कमाए चाहे कोई भी फिल्ट हो डॉक्टर हो इंजीनियर हो सोशल वर्क हो , हम किन्नर भी किसी से कम नहीं है। आप सब गुजारिश है कि यदि आपका कोई औलाद मेरी तरह है तो

समझिए उसे पढ़ाईए । मेरी तरह उसका जीवन बर्बाद मत कीजिए"[26]। यह कथन वह हर उस थर्ड जेंडर व्यक्ति की पुकार है, जो अपने परिवार और समाज से सम्मान, समर्थन और अपनापन चाहता है। यह संवेदनशीलता हमें इस सच्चाई से जोड़ती है कि एक परिवार का साथ किसी के जीवन को कैसे बदल सकता है और अस्वीकार्यता का दर्द कितना गहरा हो सकता है ।

#### 4.3.2.2 पारिवारिक दबाव और बहुतायत

परिवार, जिसे प्रेम और विश्वास का आधार होना चाहिए, जब समाज की रूढ़ियों को कर्तव्य के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत करता है, तो वह इन परंपराओं और अपेक्षाओं को जीवन का हिस्सा बना लेता है। फिल्म 'दरमियाँ' इसका झलक देखनो को मिलता है इम्मी की मां ज़ीनत अपने बेटे को स्वीकारने का साहस नहीं जुटा पाती। समाज के डर से वह इम्मी को अपना बेटा कहने के बजाय भाई बताती है। इम्मी इस रिश्ते को लेकर बेहद व्यथित होता है, लेकिन वह अपनी मां को "आपा" कहकर पुकारने के लिए विवश है। यह परिस्थिति इम्मी के लिए अत्यंत हृदयविदारक है और पारिवारिक बहिष्कार की पीड़ा को दर्शाता है। फिल्म 'तमन्ना' में टिक्कु का अपने परिवार से पूरी तरह से बहिष्कार हो जाता है, विशेषकर अपने पिता और भाई से, जिन्होंने कभी उसे अपनाया नहीं । समाज ने टिक्कु को इस रूप में पहचाना कि वह "हिजड़ा है" और उसकी पहचान को अपमानित किया । फिल्म में उसके परिवार द्वारा उसे लगातार हिजड़ा कहकर तिरस्कृत किया जाना और उसे अपनी संपत्ति का हिस्सा नहीं दिया जाना, समाज की कठोर सच्चाई को सामने लाता है । टिक्कु के अस्तित्व और पहचान का मजाक उड़ाना और उसे परिवार से बेदखल करना, समाज के उन रूढ़िवादी दृष्टिकोणों को उजागर करता है जो हिजड़ों को मनुष्य नहीं, बल्कि एक निचला वर्ग मानते हैं ।

#### 4.3.2.3 अकेलापन और विस्थापन

अकेलेपन और विस्थापन का मेल व्यक्ति के दिल में एक खालीपन पैदा करता है जिसे भरना मुश्किल होता है । अकेलापन और विस्थापन थर्ड जेंडर व्यक्तियों के जीवन में ऐसा खालीपन पैदा करते हैं, जो उनकी आत्मा को भीतर से तोड़ देता है। उनका अकेलापन सिर्फ किसी के साथ न होने का एहसास नहीं, बल्कि परिवार और समाज द्वारा उनकी पहचान को नकारने का गहरा दर्द है। विस्थापन उनके लिए केवल जगह बदलने का नाम नहीं, बल्कि अपनी जड़ों और अपनेपन से कट जाने की पीड़ा है। यह स्थिति उन्हें अपनी सच्चाई को खुलकर जीने और किसी समुदाय का हिस्सा बनने से रोकती है। परिवार और समाज का थोड़ा सा अपनापन और सहानुभूति उनके जीवन में नई रोशनी ला सकते हैं।

फिल्म 'तमन्ना' (1998) की शुरुआत में टिक्कु, एक हिजड़ा, अपनी मां के असामयिक निधन पर शोकित होता है । उसकी मां ही उसका सहारा थी, और जब वह चली जाती है, तो टिक्कु को महसूस होता है कि अब वह पूरी दुनिया में अकेला है । वह कभी अपनी किस्मत को दोष देता है तो कभी अल्लाह से नाराज होता है, क्योंकि उसकी मां ही उसके लिए सब कुछ थीं । जनाज़े के वक्त उसका रोना और मां के शव को न उठाने देना इस दर्द का प्रतीक है कि उसे अपनी पहचान और प्यार देने वाली मां को हमेशा के लिए खो देना कितना गहरा आघात है।

फिल्म 'शबनम मौसी' में समाज द्वारा लगातार अस्वीकारे जाने के कारण शबनम जैसे हिजड़ों के जीवन में गहरा अकेलापन समा जाता है । वह सभी के लिए अजनबी और अपरिचित बन जाती है। अपनी इच्छाओं और अधिकारों के लिए लड़ने की रास्ता चुनने पर उसे हर बार असहाय महसूस करना पड़ता है, जिससे उसका अकेलापन और भी बढ़ जाता है। "हम भी उसी रचयिता के हैं जिसने सबको बनाया है,"[27] कहकर वह अपनी मानवता को सशक्त रूप में सामने रखती है, परंतु समाज उसे अब भी अनदेखा करता है।

थर्ड जेंडर समुदाय के लोग अक्सर अपने परिवार और समाज के तिरस्कार का सामना करते हैं । उन्हें अपनी यौनिकता या लिंग पहचान के कारण घर से बाहर निकाल दिया जाता है, जिससे वे बेघर हो जाते हैं । यह 'घरेलू विस्थापन' न केवल उनकी सुरक्षा को खतरे में डालता है, बल्कि उनकी मानसिक स्थिति पर भी गहरा आघात करता है । प्रस्तुत फिल्म में लक्ष्मी, जो अपनी मेहनत से एक घर और जमीन हासिल करती है, लालच और छल के शिकार हो जाती है । उसकी संपत्ति को छीन लिया जाता है, और उसे न केवल शारीरिक रूप से बल्कि मानसिक रूप से भी विस्थापित कर दिया जाता है । यह घटना लक्ष्मी के जीवन में हिंसा और अन्याय की चरम सीमा को दर्शाता है ।

#### 4.3.2.4 पिता द्वारा अस्वीकार्यता

पिता द्वारा अस्वीकार्यता,  बच्चे के आत्मसम्मान, पहचान, और मानसिक स्थिरता को गहरे स्तर पर प्रभावित करती है । पितृ, जो अक्सर सुरक्षा, मार्गदर्शन और समर्थन का प्रतीक माने जाते हैं, जब अपने बच्चे को अस्वीकार करते हैं, तो यह एक ऐसा घाव बन जाता है, जिसे भरने में शायद पूरी जिंदगी लग जाती है । पिता द्वारा निष्कासन का कारण विभिन्न हो सकता है-संतान की लैंगिक पहचान, यौनिकता, करियर विकल्प, या पारिवारिक परंपराओं और अपेक्षाओं से भिन्न होना ।

फिल्म ‘खेजडी’ केन्द्रपात्र इंटर सेक्स खेजड़ी के जीवन का सबसे बड़ा संघर्ष अपने पिता की अस्वीकृति को सहन करना है । एक डॉक्टर होने के बावजूद, उसके पिता अपनी बेटी की पहचान को समझने और स्वीकारने में असमर्थ होते हैं । लेकिन फिल्म चरम पर वे अपनी धारणाओं को बदलते हैं और खेजड़ी को गले लगाते हैं,  जिससे यह संदेश मिलता है कि समझ और प्रेम के जरिए आपसी विवाद या मतभेदों को खत्म करके मेल-मिलाप और सुलह करना संभव है।

### 4.3.3 राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक समस्याएँ

भारत सदैव धर्मप्रधान और सांस्कृतिक विविधता से परिपूर्ण देश रहा है, जहाँ धर्म को केवल पूजा-पद्धति तक सीमित न रखकर जीवन के संपूर्ण पहलुओं का आधार माना गया है। 'धर्म इति धार्यते' के सूत्र में जीवन को धारण करने वाले सभी प्राणी, चाहे वे किसी भी जाति, वर्ग, या लिंग से संबंधित हों, समाहित हो जाते हैं। धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानवता, कर्तव्य और समानता का विस्तार है, जो किसी भेदभाव को स्वीकार नहीं करता। फिर भी, तीसरे लिंग (ट्रांसजेंडर) को समाज ने लंबे समय तक धर्म और परंपराओं के नाम पर हाशिए पर रखा, उनकी मानवीय गरिमा को अनदेखा किया। परंतु, यदि भारतीय साहित्य और संस्कृति की गहराई में झांकें, तो यह स्पष्ट होता है कि धर्म का वास्तविक स्वरूप केवल मानवता और समानता को स्थापित करना है। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में, धर्म के व्यापक संदर्भों के साथ तीसरे लिंग की पीड़ा, संघर्ष और विशिष्टता को भी स्थान मिला है। यह साहित्य, चाहे किसी भी विचारधारा से प्रेरित हो, धर्म के मर्म को मानवता और समावेशिता के रूप में परिभाषित करता है। तीसरे लिंग के लिए यह दृष्टिकोण धर्म की उस शक्ति का प्रतीक है, जो हर जीवन को समान रूप से स्वीकार कर उसे गरिमा प्रदान करता है।

एक सशक्त राष्ट्र का आधार उसका स्वस्थ और आदर्श राजनीतिक परिवेश होता है। ट्रांसजेंडर समुदाय, जो समाज की विविधता और जीवन की बहुरंगी धाराओं का प्रतीक है, आज भी अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्षरत है। राजनीतिक क्षेत्र में उनकी उपेक्षा न केवल उनके सामाजिक और आर्थिक विकास में बाधा बनती है, बल्कि समानता और न्याय जैसे मूलभूत सिद्धांतों पर भी गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। संविधान द्वारा समानता और गैर-भेदभाव का वादा किए जाने के बावजूद, यह समुदाय आज भी समाज के हाशिये पर खड़ा है। उनकी पहचान को स्वीकारने की अनिच्छा, चुनावों में उनकी भागीदारी

पर बाधाएँ, और उनके अधिकारों की अनदेखी, राजनीति में गहराई तक पैठ चुकी असमानताओं और भेदभाव को स्पष्ट रूप से उजागर करती हैं।

#### 4.3.3.1 ट्रांसजेंडर विधायक बनने का संघर्ष

ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए विधायक बनने का संघर्ष केवल व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं, बल्कि उनके अस्तित्व, पहचान और अधिकारों की प्रतीकात्मक लड़ाई है। राजनीति में उनका प्रतिनिधित्व न होने से यह स्पष्ट होता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी उन्हें हाशिए पर रखा गया है। समाज की रूढ़िवादी सोच उनकी योग्यता को लैंगिक पहचान के आधार पर आंकती है, जो उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती है। प्रचार में भेदभाव, वित्तीय सहयोग की कमी और समर्थन का अभाव उनके संघर्ष को और जटिल बनाता है। यह संघर्ष सिर्फ राजनीतिक भागीदारी का नहीं, बल्कि समग्र सामाजिक और लोकतांत्रिक सुधार का प्रतीक है।

फिल्म 'शबनम मौसी' में चुनाव प्रचार के दौरान शबनम मौसी को समाज में गहराई तक जमी रूढ़िवादी सोच और भेदभाव के कारण अनेक चुनौतियों से गुजरना पड़ता है। उनकी लैंगिक पहचान को लेकर तंज और अपमानजनक टिप्पणियां उनकी राह को मुश्किल बनाती हैं। समाज उन्हें केवल "हिजड़ा" मानते हुए उनकी योग्यता और नेतृत्व क्षमता को नजरअंदाज करता है, यह सोचकर कि एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति राजनीतिक जिम्मेदारियों को निभाने के योग्य नहीं हो सकता। शबनम लोगों से पूछती है कि 'हमें चुनाव में खड़ा होने का हक नहीं है। 'इन पूर्वाग्रहों के चलते उनके प्रचार अभियान में वित्तीय सहयोग और संसाधनों की कमी बनी रहती है, जबकि राजनीतिक वर्ग भी उनकी कोशिशों को गंभीरता से नहीं लेता। इन सबके बावजूद, शबनम मौसी अपने दृढ़ संकल्प और आत्मविश्वास से इन बाधाओं को पीछे छोड़ती हैं। उनकी संवेदनशीलता, ईमानदारी और जनता के प्रति सच्चा समर्पण उन्हें लोगों के बीच लोकप्रिय बना देता है। फ़िल्म में यह स्पष्ट किया गया है कि

उसका समर्पण और मानवीय दृष्टिकोण ने उन्हें एक सशक्त नेता के रूप में स्थापित किया। शबनम मौसी का यह सफर इस बात का प्रतीक है कि नेतृत्व की क्षमता किसी की लैंगिक पहचान पर आधारित नहीं होती, बल्कि उसके चरित्र, सेवाभाव और दृढ़ निश्चय पर निर्भर करती है। उनका संघर्ष ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए प्रेरणा और समाज के लिए एक महत्वपूर्ण संदेश है कि नेतृत्व को पूर्वाग्रहों से परे देखने की जरूरत है।

**4.3.3.2 बेरोज़गारी और आर्थिक तंगी**

बेरोज़गारी और आर्थिक तंगी ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए एक बड़ी और निरंतर समस्या बनी हुई है । यह समस्या न केवल समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करती है, बल्कि इस समुदाय के मानसिक, सामाजिक, और आर्थिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डालती है । समाज में व्याप्त गहरे पूर्वाग्रह और भेदभाव की मानसिकता के कारण ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को शिक्षा और रोजगार के समान अवसरों से वंचित रहना पड़ता है । उनकी लैंगिक पहचान और शारीरिक भिन्नता को लेकर बनाई गई रूढ़ियां अक्सर उन्हें मुख्यधारा के कार्यक्षेत्र से बाहर कर देती हैं, जिससे उनकी आजीविका और आर्थिक स्वायत्तता पर गंभीर आघात होता है। बेरोजगारी की विकट स्थिति में, ट्रांसजेंडर व्यक्ति न केवल आर्थिक अभाव का सामना करते हैं, बल्कि सामाजिक बहिष्कार और उपेक्षा का दंश भी झेलते हैं। यह आर्थिक अस्थिरता उन्हें कई बार ऐसे कार्यों को करने के लिए विवश कर देती है, जो न तो सम्मानजनक होते हैं और न ही दीर्घकालिक स्थायित्व प्रदान करते हैं। परिणामस्वरूप, वे गरीबी, असुरक्षा और मानसिक तनाव के ऐसे दुश्चक्र में फंस जाते हैं, जिससे बाहर निकल पाना उनके लिए अत्यंत चुनौतिपूर्ण हो जाता है। यह स्थिति उनके आत्मसम्मान और जीवन के अधिकारों पर गहरी चोट करती है ।

फिल्म 'दरमियाँ' इम्मी का जीवन आर्थिक संघर्षों से भी भरा है । अपनी मां ज़ीनत के सहायक प्रबंधक के रूप में काम करने के बावजूद, दोनों की आर्थिक स्थिति स्थिर नहीं

रहती। अंततः, मजबूरी में इम्मी को हिजड़ा समाज में लौटना पड़ता है। लेकिन वेश्यावृत्ति से इनकार करने के बाद उसे पितृसत्तात्मक समाज द्वारा क्रूर शोषण सहना पड़ा। इम्मी के संघर्ष इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि आर्थिक असुरक्षा अक्सर व्यक्ति को अस्वीकृत समुदायों या समाज में लौटने पर मजबूर कर देती है।

फिल्म 'वेलकम टु सज्जनपूर' फिल्म में सज्जनपुर के अधिकांश लोग बेरोज़गार हैं और शिक्षा की कमी के कारण उनके पास नौकरी के अवसर नहीं हैं। यह समस्या पात्रों की कठिनाइयों में स्पष्ट झलकती है। उदाहरण के लिए, नायक महादेव गाँव के लोगों के लिए पत्र लिखने का काम करता है, क्योंकि पूरे गाँव में कोई भी पढ़-लिख नहीं सकता। यह इस बात का संकेत है कि गाँव में शिक्षा और रोजगार का घोर अभाव है। बेरोज़गारी की यह समस्या गाँव के युवाओं के सामने एक दीवार की तरह खड़ी है, जो उनकी महत्वाकांक्षाओं और सपनों को जकड़े रखती है। फिल्म के एक दृश्य में महादेव कहता है, "हम तो पढ़े लिखे हैं लेकिन रोज़गार का नामोनिशान नहीं... कागज़ पर कलम चलाने के अलावा कुछ और क्या कर सकते हैं?"[28] बेरोजगारी की त्रासदी और अवसरों की कमी को गहराई से उजागर करती है। यह संवाद शिक्षित युवाओं की उस निराशा को दर्शाता है, जो अपनी योग्यता के बावजूद रोजगार के लिए संघर्षरत हैं। यह व्यवस्था की विफलता पर एक गहरा प्रश्न खड़ा करता है।

### 4.3.3.3 राजनैतिक षड्यंत्र और शोषण

ट्रांसजेंडर समुदाय लंबे समय से राजनीति के जाल और षड्यंत्रों का शिकार रहा है। उनके अधिकार और समस्याएँ अक्सर केवल चुनावी मंचों पर गूंजती हैं, परंतु उनकी वास्तविक आवश्यकताओं और पीड़ाओं को समझने या हल करने के लिए ठोस कदम कभी नहीं उठाए जाते। यह वही समुदाय है, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से पहले ही हाशिये पर धकेला जा चुका है, और राजनीतिक उपेक्षा व शोषण ने उनकी स्थिति को और भी

गहराई में डुबो दिया है। उनके संघर्ष केवल अस्तित्व की लड़ाई नहीं हैं, बल्कि उस व्यवस्था के खिलाफ एक मूक विरोध भी हैं, जो उन्हें बार-बार उनके अधिकारों और गरिमा से वंचित करती है। यह उनकी मानवता को अनदेखा करने और उन्हें केवल साधन के रूप में देखने वाली राजनीति का एक कठोर सत्य है।

'वेलकम टु सज्जनपूर' फिल्म की सबसे महत्वपूर्ण कहानी है मुन्नीबाई की, जो एक हिजड़ा होते हुए भी सरपंच का चुनाव लड़ती है। समाज में हाशिये पर रखे गए इस वर्ग के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन उसकी यह महत्वाकांक्षा उसे कई राजनीतिक षड्यंत्रों का शिकार बनाती है। गाँव का प्रभावशाली व्यक्ति राम सिंह मुन्नीबाई के खिलाफ षड्यंत्र रचता है। वह कलेक्टर को पत्र लिखवाकर मुन्नीबाई की उम्मीदवारी को चुनौती देता है, यह कहते हुए कि "हिजड़े को सरपंच बनने का कोई अधिकार नहीं है, यह हमारे गाँव की इज्जत का सवाल है।[29]"

राम सिंह का कलेक्टर को लिखवाया गया पत्र स्पष्ट करता है कि किस प्रकार समाज हिजड़ों को एक सम्मानजनक स्थान देने के लिए तैयार नहीं है और यह कदम उनके पितृसत्तात्मक वर्चस्व के खिलाफ माना जाता है। राम सिंह और उसके साथियों ने मुन्नीबाई के घर में तोड़फोड़ भी की और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी, ताकि वह चुनाव से हट जाए। इसके बावजूद मुन्नीबाई हार नहीं मानती और कहती है, "हम भी इंसान हैं... यह चुनाव मेरे लिए अपने अस्तित्व की लड़ाई है।[30]"फिल्म के अंत में जब मुन्नीबाई चुनाव जीत जाती है, तो उस पर हमला किया जाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि समाज अब भी उसकी स्वीकार्यता में अक्षम है। फिल्म में इस हत्या को महादेव के उपन्यास में दिखाया गया है, वास्तविकता में मुन्नीबाई विधायक बन जाती है, जो यह दर्शाता है कि समाज में बदलाव संभव है, भले ही वह धीरे-धीरे ही क्यों न हो ।

#### 4.3.3.4 पुलिस अत्याचार

पुलिस अत्याचार ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए एक गंभीर समस्या है, जो उनके खिलाफ भेदभाव, हिंसा और सामाजिक उपेक्षा को दर्शाता है । ट्रांसजेंडर समुदाय अक्सर पुलिस अत्याचार का शिकार बनता है, जहां उनकी लैंगिक पहचान के आधार पर उनके साथ अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। झूठे आरोप लगाना, हिरासत में मारपीट करना, और सार्वजनिक स्थानों पर शर्मिंदा करना उनके लिए आम समस्याएँ बन गई हैं। ऐसे अत्याचार उनके मानवाधिकारों और आत्मसम्मान पर गहरी चोट पहुंचाते हैं। हिजड़ा समुदाय पर आधारित फिल्मों में अक्सर पुलिस द्वारा किए गए अत्याचार और दुर्व्यवहार को दर्शाया जाता है । आमतौर पर, पुलिस का दृष्टिकोण किन्नरों के प्रति नकारात्मक होता है, और उन्हें अक्सर आवारा और अपराधी समझा जाता है । इस प्रकार, शबनम मौसी को एक षड्यंत्र के तहत हत्या के झूठे आरोप में फंसा दिया जाता है । जब वह पुलिस के सामने अपनी निर्दोषता की बात रखती है, तो पुलिस उसकी बात को अनसुना करते हुए एकतरफा कार्रवाई करती है और उसे प्रताड़ित करती है, साथ ही उसे वेश्या कहकर उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाती है । एक दृश्य में वह कहती है, "हम पर चारों तरफ से अत्याचार हो रहा है, जैसे हम कोई रावण हैं।[31]" यह संवाद समाज और कानून द्वारा उसे मिले अपमान और अन्याय का सजीव चित्रण है ।

#### 4.3.3.5 धार्मिक कट्टरपंथ और रूढ़िवादी सोच

धार्मिक कट्टरपंथ और रूढ़िवादी मानसिकता ट्रांसजेंडर समुदाय के संघर्षों को और अधिक कठिन बना देती है । धर्म और परंपराओं के नाम पर उनकी पहचान को नकारा जाता है और उनके अधिकारों को दबा दिया जाता है। उन्हें "अप्राकृतिक" या "पापी" कहकर बहिष्कृत किया जाता है, मानो उनकी अस्मिता किसी दैवीय विधान का उल्लंघन हो। धार्मिक संस्थाएं और उनके अनुयायी उनकी लैंगिक पहचान को धर्म-विरोधी ठहराकर उनकी गरिमा

और स्वतंत्रता पर प्रहार करते हैं। फिल्म 'संघर्ष' लज्जा शंकर का चरित्र अंधविश्वास और धार्मिक कट्टरता का प्रतीक है। फिल्म में लज्जा शंकर अपने को माँ काली का सेवक मानते है वह कहता है 'माँ मुझे आदेश देती है और में उस आदेश का पालन करता हुँ[32]।' वह अपनी विकृत मानसिकता और धार्मिक आस्था के नाम पर बच्चों की बलि देता है, यह मानते हुए कि माँ काली उसे अमरता का वरदान देंगी। यह फिल्म उन झूठे विश्वासों को उजागर करती है, जो आज भी समाज में गहराई से जड़े हुए हैं।

**4.3.3.6 परंपरागत अंधविश्वास**

ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति समाज में कई परंपरागत अंधविश्वास और गलत धारणाएं व्याप्त हैं, जो उनकी सामाजिक स्थिति और अधिकारों को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। ये अंधविश्वास न केवल उनके साथ भेदभाव और उपेक्षा को बढ़ावा देते हैं, बल्कि उन्हें मुख्यधारा से अलग-थलग भी करते हैं। उन्हें 'शापित,' 'अशुभ', या 'दैवीय कोप का परिणाम' मानने जैसी धारणाएँ आज भी कई स्थानों पर प्रचलित हैं। इन भ्रामक विश्वासों ने न केवल उनके अस्तित्व को संदेह के घेरे में ला खड़ा किया है, बल्कि उनके साथ भेदभाव और उपेक्षा को एक सामान्य व्यवहार बना दिया है । सामाजिक परंपराओं ने उनकी छवि को एक सीमित दायरे में कैद कर दिया है, जहाँ उन्हें केवल कुछ विशेष अवसरों—जैसे शादियों या बच्चों के जन्म—पर आशीर्वाद देने वाले पात्र के रूप में देखा जाता है। यह अंधविश्वास उनके सामाजिक उत्थान और समानता के अधिकारों की राह में सबसे बड़ी बाधा बन गया है, जो उनकी गरिमा और मानवीय स्वतंत्रता को प्रत्यक्ष रूप से नकारता है।

फिल्म 'वेलकम टु सज्जनपुर', के लोग अंधविश्वास में गहरे जकड़े हुए हैं, और इसे फिल्म में कई घटनाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए, जब गाँव में कोई बीमारी फैलती है या कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना होती है, लोग इसे किसी बुरी शक्ति या अंधविश्वास का परिणाम मानते हैं। इस प्रकार के अंधविश्वास का लाभ कई लोग उठाते हैं,

जिनमें गाँव के तथाकथित साधु और ओझा शामिल हैं। एक महत्वपूर्ण दृश्य में, गाँव के लोग एक पुरानी मान्यता के आधार पर एक अनुष्ठान करते हैं ताकि गाँव में बरकत और खुशहाली आए। इस सीन में यह दिखाया गया है कि "सज्जनपुर के लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए किसी न किसी अंधविश्वास का सहारा लेते हैं।[33]"

ट्रांसजेंडर समुदाय को लेकर समाज में सदियों से गहरे अंधविश्वास जड़ें जमाए हुए हैं, जो उनकी अस्मिता और मानवता पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं इन भ्रामक विश्वासों ने न केवल उनके अस्तित्व को संदेह के घेरे में ला खड़ा किया है, बल्कि उनके साथ भेदभाव और उपेक्षा को एक सामान्य व्यवहार बना दिया है। सामाजिक परंपराओं ने उनकी छवि को एक सीमित दायरे में कैद कर दिया है, जहाँ उन्हें केवल कुछ विशेष अवसरों—जैसे शादियों या बच्चों के जन्म—पर आशीर्वाद देने वाले पात्र के रूप में देखा जाता है। यह अंधविश्वास उनके सामाजिक उत्थान और समानता के अधिकारों की राह में सबसे बड़ी बाधा बन गया है, जो उनकी गरिमा और मानवीय स्वतंत्रता को प्रत्यक्ष रूप से नकारता है।

**निष्कर्ष**

हिंदी सिनेमा ने ट्रांसजेंडर समुदाय के जीवन और उनकी समस्याओं को दर्शाने में काफी प्रगति की है । आरंभिक फिल्मों में उन्हें अक्सर स्टीरियोटाइप किया गया, जहाँ वे या तो हास्य के लिए इस्तेमाल किए गए या अपराध और वेश्यावृत्ति से जुड़े खलनायक के रूप में प्रस्तुत किए गए। 'सड़क' (1991) और 'संघर्ष' (1999) जैसी फिल्मों में ट्रांसजेंडर पात्रों को अमानवीय और नकारात्मक छवि में दिखाया गया, जो उस दौर के समाज की मानसिकता और उनके प्रति दृष्टिकोण का प्रतीक थी। लेकिन 'दरमियाँ' (1997) और 'तमन्ना' (1997) जैसी फिल्मों ने इस प्रवृत्ति को तोड़ते हुए ट्रांसजेंडर समुदाय के संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्मिता की खोज को गहराई से प्रस्तुत किया। इन फिल्मों ने उनकी आर्थिक कठिनाइयों, सामाजिक अस्वीकार्यता और पारिवारिक बहिष्कार जैसे मुद्दों को उभारा, जिससे दर्शकों की

सोच में परिवर्तन का बीजारोपण हुआ। ‘चंडीगढ़ करे आशिकी’ (2022) और ‘शबनम मौसी’ (2005) जैसी फिल्में ट्रांसजेंडर समुदाय की वास्तविक पहचान, उनके अधिकारों और समाज में उनकी स्वीकार्यता को बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण साबित हुई हैं। हिंदी सिनेमा को इस दिशा में और प्रयास करने की आवश्यकता है, ताकि अपनी प्रभावशाली क्षमता का उपयोग कर वह ट्रांसजेंडर समुदाय को सशक्त और सम्मानजनक रूप से प्रस्तुत कर सके, जिससे समाज में समानता और समावेशिता को बढ़ावा मिले।

## संदर्भ ग्रंन्थ सूची


1. सड़क,निर्देशक-महेश भट्ट,1991
2. सड़क,निर्देशक-महेश भट्ट,1991
3. दरमियाँ- इन बिट्टवीन, निर्देशक- कल्पना लाजमी,1997
4. दरमियाँ- इन बिट्टवीन, निर्देशक- कल्पना लाजमी,1997
5. तमन्ना,निर्देशक-महेश भट्ट, 1997
6. तमन्ना,निर्देशक-महेश भट्ट, 1997
7. तमन्ना,निर्देशक-महेश भट्ट, 1997
8. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005
9. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005
10. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005
11. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005
12. वेलकम डु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008
13. वेलकम डु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008
14. वेलकम डु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008
15. क्वींस डेस्टिनी ऑफ डांस,निर्देशक- डेविड अत्तवुड,2011
16. क्वींस डेस्टिनी ऑफ डांस,निर्देशक- डेविड अत्तवुड,2011
17. लक्षमी बम, निर्देशक- राघव लॉरेंस,2018
18. मोनिका देवी, अस्थित्व की तलाश में सिमरन, हंस प्रकाशन, 2022 पृष्ट सं- 103
19. क्वींस डेस्टिनी ऑफ डांस,निर्देशक- डेविड अत्तवुड,2011
20. सड़क,निर्देशक-महेश भट्ट,1991
21. सड़क,निर्देशक-महेश भट्ट,1991
22. दरमियाँ- इन बिट्टवीन, निर्देशक- कल्पना लाजमी,1997

23. तमन्ना,निर्देशक-महेश भट्ट, 1997

24. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005

25. दरमियाँ- इन बिट्वीन, निर्देशक- कल्पना लाजमी,1997

26. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005

27. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005

28. वेलकम टु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008

29. वेलकम टु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008

30. वेलकम टु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008

31. शबनम मौसी ,निर्देशक- योगेश भारद्वाज, 2005

32. संघर्ष ,निर्देशक- तनूजा चंद्रा 1999

33. वेलकम टु सज्जनपूर,निर्देशक- श्याम बेनेगल, 2008